चन्दामामा
नवम्बर १९८८
3
RS

पारले

राम और श्याम से विचित्र प्राणी की मुलाकात

नये
डायमंड कॉमिक्स
मनोरंजन और हंसी का खजाना
48 रंगीन पृष्ठों में भरपूर रोचक कॉमिक्स
डायमंड कामिक्स डाइजेस्ट में
जैन धर्म के 24 तीर्थंकर
पल्टू और चम्बल के डाकू
अंकुर और शाकाल से टक्कर
मीकू और बेचारा शेर खाँ
मोटू पतलू और विचित्र नगर
मामा भांजा और अनोखी शर्त
फौलादी सिंह और रहस्यमयी घाटी
मूल्य प्रत्येक 5/-
महाभारत
सम्पूर्ण महाभारत की कथा 128 रंगीन पृष्ठों में हर पृष्ठ रोचक
मूल्य 12/-
अंकुर बाल बुक क्लब
सदस्य बनने के लिए आपको क्या करना होगा :—
सदस्यता कूपन
डायमंड कामिक्स प्रा.लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

प्यारे बच्चो,

बताओ, क्या है मेरे पास? खेलों और मौजमस्ती का खज़ाना! और कौन आया है मेरे साथ, जानते हो? – कॉफी बाइट और चॉकलेट एक्लेयर्स. तो बस, हो जाओ शुरू. मौजमस्ती का पूरा मेला, तुम्हारे और तुम्हारे दोस्तों के इंतज़ार में है.

आओ, तुम्हें मिलवाऊं कॉफी-बाइट से. वह तुम्हें सिखाएगा एक नया मज़ेदार खेल बनाना और खेलना.

मेरे खेल का नाम है
मार्बल बाउल्स
और देखो, इसे ऐसे खेलते हैं...

ज़रूरत का सामानः गत्ते का एक छोटा डिब्बा (जूते के बड़े डिब्बे से काम चल जायेगा.) थोड़ी सी मार्बल्स (कांच की गोलियां). ये है मार्बल्स से खेलने की एक नयी तरकीब. तुम स्कोर-बॉक्स बनाओ. गत्ते के डिब्बे को एक तरफ से काट कर कुछ कमानें बना लो. इसका तला यानी निचला हिस्सा खुला रखना होगा. हर कमान पर एक स्कोर संख्या लिख लो. अब पीछे खड़े हो जाओ और मार्बल्स को कमानों के बीच से लुढ़काओ. इसे जितने दोस्त चाहें, खेल सकते हैं. स्कोर गिनते जाओ. जिसका स्कोर सबसे पहले १०० हो जाये, वो जीतेगा.

क्या तुम जानते हो?
तुमने कभी सोचा भी नहीं होगा कि घोंघे (स्नेल) बड़े खूंखार होते हैं. लेकिन एक घोंघे के २५ हज़ार तक दांत हो सकते हैं. ज़रा सोचो तो अगर वह काट खाए तो क्या हो?

पॅरीज़ – टॉफियां और

ज़रा मेरे पास आओ,
मैं तुम्हें प्लास्टिक के इन्सान बनाना सिखाऊंगा.

ज़रूरत का सामान: प्लास्टिक के पुराने डिब्बे या आइसक्रीम के खाली कप, सफेद कागज़, गत्ता और ऊन, पेंट्स, कुछ फेल्ट पेन, कैंची.

सफेद कागज़ को हल्के गुलाबी रंग में रंग कर सुखा लो. इसे कपों के चारों तरफ चिपका दो. बालों और मूंछों की जगह ऊन चिपकाओ (अलग-अलग रंग भी ले सकते हो.) या चाहे तो रूई लगा दो. गत्ते को हैट और जूतों के आकार में काटकर इसमें जोड़ दो. इसके बाद फेल्ट पेनों से बाकी का चेहरा बना डालो. आंखों की जगह पर बटन या तरबूज के बीज चिपकाए जा सकते हैं. या फिर, फैल्ट पैन से आंखें बना डालो. अब प्लास्टिक के इन इन्सानों का जो चाहे नाम रख दो. अपने किसी प्रिय दोस्त या आंटी को यह प्लास्टिक इन्सान उपहार में दोगे तो इसे देखकर उन्हें मज़ा आ जायेगा.

बूझो तो जानें!!!

इन तीन आदमियों में से किसी एक आदमी की स्थिति इस तरह बदलो कि उसकी शर्ट पर अंग्रेजी में लिखी संख्या, अन्य आदमियों में से किसी एक की शर्ट पर लिखी संख्या की दोगुनी और दूसरे की लिखी संख्या की सिर्फ़ आधी हो.

उत्तर:
'9' नंबर की गिनतीवाले आदमी को सिर के बल खड़ा कर दो.

HTA 7071

बिस्किट. सबको भाएं.

THE KING OF SWEETS

चन्दामामा

नवम्बर 1988

★

विषय-सूची

★

एक प्रति : ३-००

वार्षिक चन्दा : ३६-००

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

समस्त उत्तम गुणों में दानशीलता का गुण सर्वोत्तम है। अन्य उत्तम गुणों द्वारा दूसरों की न हानि होती है न भलाई ही। हानि न पहुँचाना भलाई करना नहीं कहा जा सकता। इससे अधिक-से-अधिक अपने को आत्मिक संतोष मिल सकता है। पर समाज की भलाई नहीं। दान गुण का मतलब एक व्यक्ति के द्वारा यथाशक्ति दूसरों की भलाई करना है। 'स्मारक' नाम की कहानी द्वारा हमें इस सत्य का बोध होता है।

अमर वाणी

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते, मृत्योर्यन्ति विततस्यपाशं,
अथधीरा अमृतत्वं विदित्वा, धृवमधृवेष्विव: न प्रार्थयन्ते ॥

[नीच व्यक्ति अल्प सुखों के पीछे दौड़ कर मृत्यु रूपी जाल में फंस जाता है। पर धीर और नित्य तथा अनित्य का ज्ञान रखनेवाला व्यक्ति कभी अल्पसुखों द्वारा शाश्वत आनन्द की कामना नहीं करता।]

वर्ष : ४१ नवंबर १९८८ अंक : ३

एक प्रति : ३.०० वार्षिक चन्दा : ३६.००
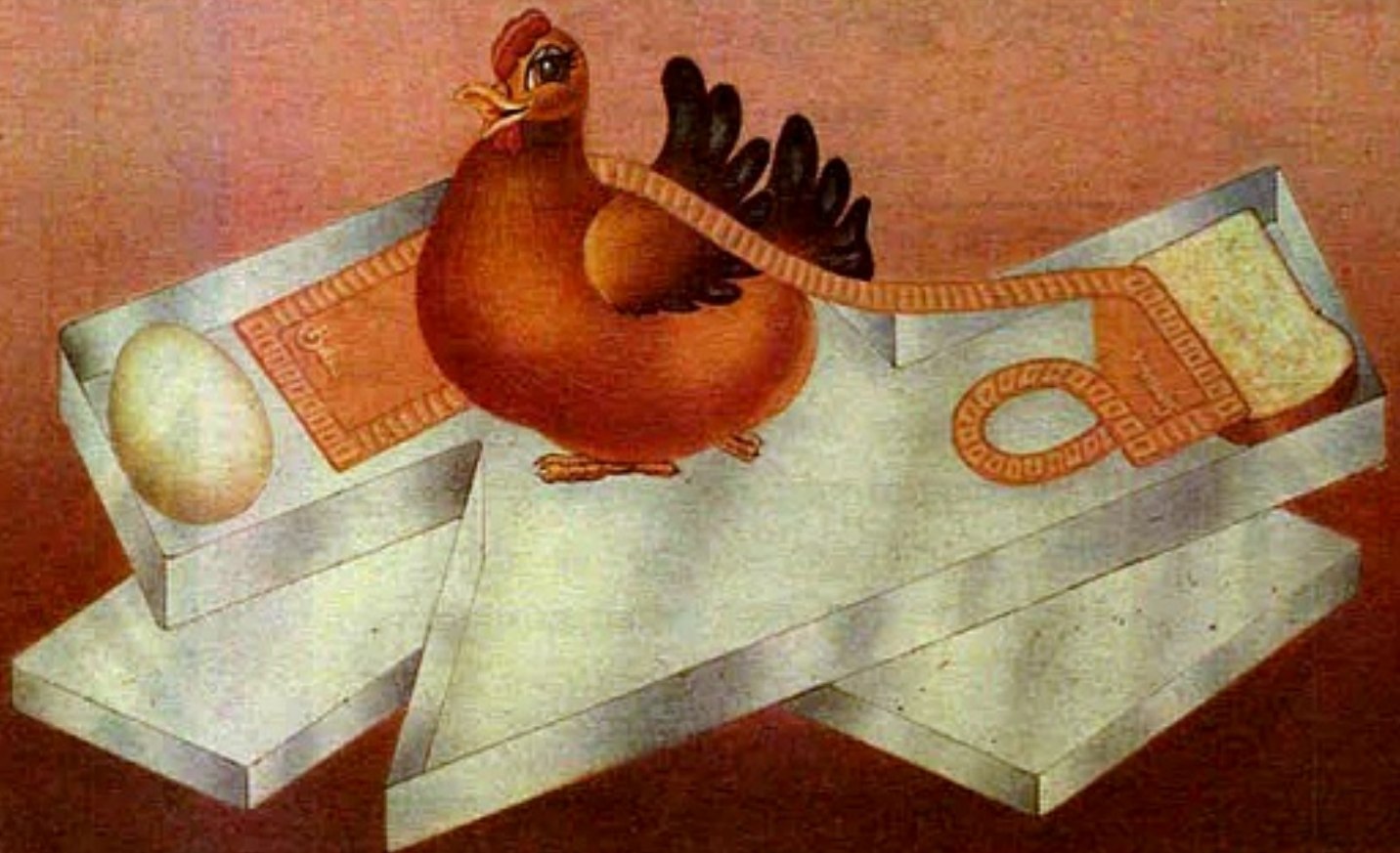
चन्दामामा के सम्वाद

'यति' के पद-चिन्ह ?

यह कहा जाता है कि हिमालय प्रान्त में 'यति' नाम का एक महा प्राणी निवास करता है। इस आधार पर इंग्लैण्ड का एक दल जानकारी प्राप्त करने में जुट गया। उनको बड़े-बड़े पद-चिन्ह दिखाई दिये। नेता ने कहा, "नेपालवासी यह विश्वास करते हैं कि 'यति' नामक प्राणी अस्तित्व में है। हमने तो ऐसे प्राणी को नहीं देखा है, पर लगता है कि इसमें थोड़ी-बहुत सचाई ज़रूर है।"

तबला-वादन में नया प्रतिमान

अलिगढ वासी चन्दन चटर्जी ने लगातार २५ घंटे तबला बजाकर नया प्रतिमान स्थापित किया है।

स्फिंक्स का इलाज

कैरो के समीपवर्ती पिरामिड़ों के निकट मनुष्य का सिर व सिंह की कायावाली 'स्फिंक्स' की विशाल शिला प्रतिमा लगभग ४,६०० वर्षों से विद्यमान है। इस के शरीर में जहाँ तहाँ दरारें निकल आयीं हैं। इन दरारों की मरम्मत का भारी पैमाने पर प्रबन्ध किया जा रहा है।

विश्व की परिक्रमा करनेवाली महिला

सिड़ने की निवासिनी मिस कोटी नामक स्त्री एक छोटी सी नाव में अकेली ही ४,२०० डि.मी. दूरी की यात्रा कहीं रुके बगैर करके १८९ दिनों में विश्व-परिक्रमा कर लौट आयी। ऐसा साहसिक कार्य संपन्न करनेवाली प्रथम महिला के रूप में मिस कोटी ने इतिहास की सृष्टि की है।
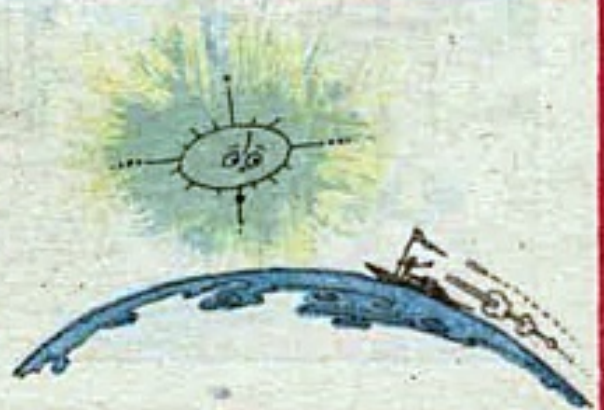
स्वाभाविकता

एक नाटक के लिये दुर्वासा मुनि की भूमिका करनेवाले की आवश्यकता आ पड़ी। वह खबर पाकर पाँच अभिनेता आ पहुँचे। इसपर नाटक-संघ का एक कार्यकर्ता आगंतुकों से बोला, "हमारे मालिक किसी ज़रूरी काम में जुटे हुए हैं। दस-पंद्रह मिनटों में आ जायेंगे। आप लोग बैठ जाइये।"

नाटक-संघ का मालिक आदिनारायण एक घंटे के बाद आ पहुँचा। आवेदकों से तरह-तरह के सवाल पूछे, फिर खीझकर बोला, "अरे, ऐरे गैरे लोगों को अभिनेता बनाने के लिये क्या इसे अनाथ शरणालय समझ रखा है क्या तुमने ?"

यह बात सुनकर उनमें से चार उम्मीदवार आश्चर्य में आ गये और उन्होंने अपने मस्तक झुका लिये। मगर श्रीहरी नाम का एक आवेदक क्रोध में आकर बोल उठा, "दस-पंद्रह मिनट इन्तज़ार करने को कहा गया, मगर घंटा-भर हमें बिठा रखा। जानते हैं यहाँ पहुँचने में हमें कितने कष्ट झेलने पड़े, कितना व्यय करना पड़ा ? तिसपर शिष्टाचार की सीमा लाँघकर आप बोल रहे हैं !"

इसपर नाटक-संघ का मालिक हँसते हुए बोला, "मुनि दुर्वासा शीघ्रकोपी थे। ऐसी स्वाभाविकता रखनेवाले व्यक्ति का चुनाव करने के लिये ही मैंने तुम लोगों के साथ ऐसा व्यवहार किया। श्रीहरी, तुम इस भूमिका के लिये सर्वथा योग्य हो।" यह कहकर उसने श्रीहरी को ही चुन लिया।
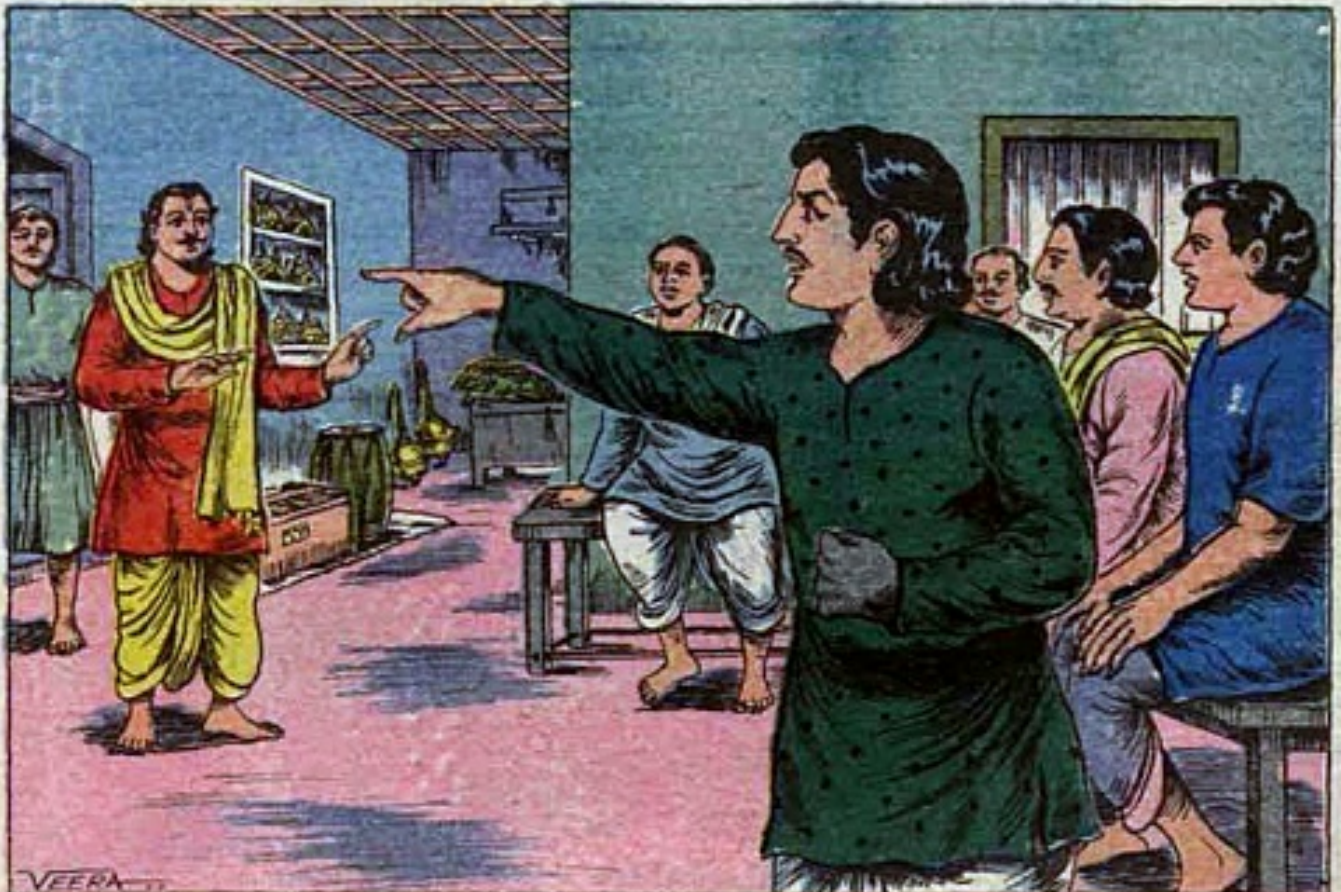
चरणदास की शादी

शिवपुरी नाम के एक गाँव में चरणदास नाम का एक युवक रहता था। उसके माँ-बाप उसके बचपन में ही स्वर्ग सिधारे थे, इसलिये गाँव के कुछ परिवारों के छोटे-मोटे काम कर के वह अपना गुज़ारा करता था। समय आने पर वह हर किसी के काम आता था। हर काम में वह पुरस्कार की अपेक्षा नहीं रखता था। इस लिए सब लोग उसे चाहने लगे।

उसी गाँव में मल्लवर्मा नामक एक पहलवान रहता था। अनाथ चरणदास से वह बहुत प्यार करता था। इसी प्रेम भाव से प्रेरित होकर मल्लवर्मा ने चरणदास को लाठी और गदा चलाना सिखाया था। विशेषकर लाठी चलाने में चरणदास ने असाधारण कौशल प्राप्त किया। वह जब लाठी चलाता था, तब दर्शकों को सिर्फ लाठी चलाने की ध्वनि सुनाई देती थी, मगर लाठी दिखाई नहीं देती थी। लाठी चलानेकी उसकी कुशलता देख लोग दंग रह जाते। उसकी खूब-तारीफ़ करते, छोटे-मोटे इनाम देकर उसका आदर करते।

शादी के युक्त उमर के चरणदास के मन में शादी करने की इच्छा जगी। पर उस अनाथ और गरीब से अपनी बेटी ब्याहने को कोई तैयार न था। चरणदास को विश्वास था कि उसका अच्छा व्यवहार देख कोई न कोई गृहस्थ उसके साथ अपनी बेटी ब्याह देगा, पर ऐसा न हुआ और इस कारण वह बहुत की व्याकुल हो उठा।

शिवपुरी गाँव का ज़मीनदार महानन्द था। उसने अपनी बेटी का विवाह वैभवपूर्वक संपन्न करके उसे किसी दूर के गाँव भेजना चाहा। लेकिन उस गाँव के रास्ते में पड़नेवाले छोटे छोटे जंगलों में डाकुओं का बोलबाला था।

इस हालत में अपनी बेटी को मूल्यवान आभूषणों के साथ ससुराल कैसे भेजा जाए, इस

शिवनामेश्वर

बातपर ज़मीनदार गहराई के साथ विचार करने लगा। गाँव के मुखिये ने ज़मीनदार को सलाह दी—"महाशय, पालकी के साथ कुछ कहार और नौकर भी तो होंगे ही, उन्हीं के साथ चरणदास को भेज दीजिये। लाठी चलाने में वह अत्यन्त प्रवीण है, दस डाकुओं को भी वह अकेले भगा सकता है।"

ज़मीनदार ने मुखिये की सलाह मान ली। उसकी कल्पना के अनुसार जंगल में दस डाकुओं ने पालकी को घेर लिया। उनको देख ज़मीनदार के लोग तितर बितर हो गये। मगर चरणदास अपनी लाठी लेकर डाकुओं के सामने कूद पड़ा। जो भी डाकू सामने आता, उसपर वह अपनी लाठी का प्रहार करने लगा। उससे घबराकर सभी डाकू भाग खड़े हुए।

ज़मीनदार की पुत्री सकुशल अपने ससुराल पहुँची। गाँव लौटने पर सब ने चरणदास की भूरी भूरी प्रशंसा की। गाँव के मुखिये ने उससे कहा, "देखो, अब तुम्हारी क़िस्मत खुली है। ज़मीनदार तुम्हें पुरस्कारस्वरूप बड़ी संपत्ति दे देंगे। तुमने ज़मीनदार की लड़की को खुशहाल अपने घर पहुँचाया। डाकुओं से उसकी रक्षा की। ज़मीनदार तुम से प्रसन्न हो मुँहमाँगा इनाम देंगे। अब तुम को किसी बात की चिन्ता नहीं रहेगी। खुश रहो।"

मगर ज़मीनदार चरणदास से खुद मिलने से दूर रहा और अपने नौकर के हाथों कुछ सिक्के चरणदास के पास भेजकर वह मौन रह गया। इससे चरणदास के मन में मनुष्यों की सज्जनतापर पूर्ण रूप से विश्वास उठ गया। अपना गाँव छोड़कर कहीं और जा बसने का विचार वह करने लगा।

ऐसे में ही एक दिन रात को चरणदास के निवास पर एक व्यक्ति आ पहुँचा और कहने लगा, "शायद तुमने पहचाना नहीं मुझे। लेकिन कुछ दिन पहले जंगल में तुम्हारी लाठी से मार खाकर भाग जानेवाले डाकुओं से ही मैं एक हूँ। मैं एक प्रस्ताव लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। सुनो, तुम्हारे जैसा व्यक्ति अगर हमारे गिरोह में शामिल हो जाए तो तुम्हारा और हमारा भी फ़ायदा होगा। हमें जो कुछ संपत्ति प्राप्त होगी, उस में पाँचवाँ हिस्सा तुम्हारा रहेगा। इसलिये तुम भी हमारे दल

का एक सदस्य बन जाओ। अच्छा काम करनेका फल क्या होता है, तुमने देख ही लिया।"

उस समय चरणदास के दिमाग में किसीकी कही हुई यह बात कौंध गयी—'जिसके पास संपत्ति है, वही सर्वत्र पूजा जाता है।'—फिर क्या था! चरणदास डाकुओं के दल में शामिल होने को तैयार हो गया।

एक दिन जंगल से गुज़रनेवाले एक यात्री को अन्य डाकुओं के साथ चरणदास ने भी रोका और उसे धमकी दी, "अपने पास जो कुछ धन है, यहाँ रख दो।"

यात्री प्राण भय से काँप उठा और अपनी थैली से सौ सिक्कों का बटुआ चरणदास के हाथ में सौंपकर बोला, "भाई साहब, यह धन मैंने अपनी बेटी की शादी के लिये कठिन श्रम करके कमाया है। यदि यह धन मेरे हाथ से निकल गया तो समझ लो कि मेरी बेटी जनमभर कुँवारी ही रह जायेगी।" यह कहते हुए यात्री की आँखें आँसुओं से भर गयीं। चरणदास को उस की हालत पर दया आई। यह भाँपकर बाकी डाकुओं ने कठोर स्वर में कहा, "ये लोग हमेशा ऐसा ही कुछ कहते हैं। इन पर हमें ज़रा भी दया नहीं दिखानी चाहिये।"

"मुझे तो इसकी बातें सच मालूम होती हैं। बेचारे को इस धन के साथ छोड़ देंगे हम।" चरणदास ने सुझाव दिया।

मगर अन्य डाकुओं ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने साफ़ कह दिया, "इसी क्षण से हम लोग तुम्हारा साथ छोड़ रहे हैं। तुम अब अपनी क़िस्मत के भरोसे जिओ। पर कभी हमारे काम में बाधा न डालो।" यह कह कर वे वहाँ से चले गये।

ख़तरा टल जाने से यात्री बहुत खुश हुआ। फिर चरणदास को प्रणाम करके वह बोला, "भाई, तुमने विपत्ति के समय मेरी मदद की। देखने में तुम सज्जन मालूम होते हो। डाकुओं के दल में तुम कैसे शामिल हो गये?"

चरणदास ने निवेदन किया कि उसकी बीती आयु में उसकी सज्जनता उसे कैसे कोई फायदा न पहुँचा सकी और विवश हो वह डाकुओं के गिरोह में कैसे शामिल हो गया।

इसपर यात्री ने चरणदास को समझाया

"तुम्हारा विचार ग़लत है। भलाई का फल हमेशा भला ही होना चाहिये। जल्दबाज़ी में आकर तुमने ग़लत निर्णय किया। मेरा नाम है विनम्र। मैं राजदरबार में एक नौकर हूँ। तुम अगर मेरे साथ चलो, तो वहाँ तुम्हें भी कोई छोटी-मोटी नौकरी दिलाने की कोशिश करूँगा।"

इसपर चरणदास विनम्र के साथ चल पड़ा। थोड़ी दूर आगे बढ़नेपर उन दोनों ने एक भयानक दृश्य देखा-

करालकंठ नामक राक्षस एक आदमी को अपने बायें हाथ में उठाकर खाने जा रहा था। उस व्यक्ति का पंचकल्याणी घोड़ा ज़ोर ज़ोर से हिनहिनाता भागा जा रहा था। उस दृश्य को देखकर थरथर काँपते हुए विनम्र बोला, "राक्षस के मुँह का कौर बननेवाला वह व्यक्ति और कोई नहीं, हमारे महाराज विद्याधर ही हैं।"

इतनी बात सुनने ही की देर थी, कि चरणदास साहसपूर्वक राक्षस की ओर बढ़ा। करालकण्ठ ने विकट हास्य करने राजा को छोड़ दिया और गरजकर पूछा, "अबे, तुम कौन हो? मुझे देख, तुम को डर से भाग जाना चाहिये था। मगर तुम तो हिम्मत से मेरी ओर बढ़ रहे हो?"

"मैं चाहे कोई भी हूँ। इससे तुम्हें मतलब? लेकिन क्या तुम यह नहीं जानते, कि इस तरह मनुष्यों को मारकर खाना नीच कार्य है?" चरणदास ने राक्षस से पूछा।

"मैं राक्षस अवश्य हूँ, लेकिन मैं भी नीतिनियमों का पालन करता हूँ। मैं प्रतिदिन केवल एक ही आदमी को मारकर खाता हूँ। इसलिये तुम बच सके हो, अब अपना रास्ता नापो।" राक्षस ने जवाब में कहा।

"तुम यदि अपने इस नियम का उत्तम प्रकार पालन करते हो, तो फिर इन को छोड़कर मुझे ही खा लो।" चरणदास ने कहा।

राक्षस को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ; उसने पूछा, "अरे! क्या तुम्हें अपने प्राणों का मोह नहीं है?"

"क्यों नहीं? लेकिन अभी तुम जिस व्यक्ति को खाने जा रहे हो, वे तो इस देश के राजा हैं। मैं एक साधारण नागरिक हूँ। मुझ जैसे व्यक्ति की अपेक्षा राजा से अधिकांश लोगों का उपकार होता है।" चरणदास ने कहा।

अब राक्षस ने चरणदास को पकड़कर कहा, "तुम्हारे साहस और त्याग पर मैं मुग्ध हूँ। अपनी कोई अंतिम इच्छा हो, तो बोलो; मैं उसकी पूर्ति करूँगा ।"

पल-दो-पल सोचकर चरणदास बोला, "मैं बचपन से ही लाठी चलाने पर जान देता हूँ। मुझे एक बार लाठी चलाने का मौक़ा दो ।"

राक्षस ने यह बात मान ली। चरणदास हाथ में लाठी लेकर हवा में लहराने लगा । लाठी चलने की ध्वनि तो अवश्य सुनाई दे रही थी, लेकिन लाठी कहीं दिखाई नहीं दे रही थी ।

इस दृश्य को देख राक्षस बहुत खुश हुआ और उसने पूछा, "लाठी चलाने की विद्या में तुम्हारी कुशलता अपूर्व है । क्या तुम मुझे यह विद्या सिखाओगे ?"

चरणदास ने राक्षस को लाठी पकड़ने की विधि, चलाने की पद्धति तथा उसका कौशल आदि उसकी समझ में आने लायक रीति से बताया ।

संतुष्ट होकर राक्षस बोला, "इस समय तुम मेरे गुरु हो। माँगो, तुम गुरुदक्षिणा के रूप में मुझ से क्या चाहते हो ?"

"तब तो सुनो, आज से तुम केवल जानवरों को मारकर अपना पेट पालो । मनुष्यों को मत मारो। यही मेरी गुरुदक्षिणा होगी।" चरणदास ने कहा ।

राक्षस थोडी देर सोचता हुआ मौन रहा और फिर बोला, "तुम जो गुरुदक्षिणा माँग रहे हो वह मेरे लिये कुछ कठिन है । अच्छी बात है, हम दोनों किसी समझौते पर पहुँच जायेंगे । मैं तुम्हें एक और उपहार देना चाहता हूँ। यदि तुम उस को अस्वीकार करोगे, तो ही मैं नरमांस-भक्षण त्याग दूँगा।" यह कहकर राक्षस चरणदास और राजा को भी समीप की एक गुफा में ले गया ।

वहाँ सोने के आभूषणों के ढेर लगे हुए थे । राक्षस ने चरणदास से कहा, "मैं इन सब आभूषणों के ढेरों को दक्षिणा के रूप में तुम्हें सौंपना चाहता हूँ । अब बताओ, तुम्हें अपार भाग्यवान बनानेवाले इन सुवर्ण के ढेरों को स्वीकार करोगे कि किसी प्रकार से तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध न करनेवाली पहली इच्छा को ही चाहोगे ?"

चरणदास मन्दहास करके बोला, "क्या तुम ऐसा समझते हो, कि धन के इन ढेरों को देख मैं तुम्हारे प्रलोभन में आ सकूँगा ? तुम्हारा नरमांस भक्षण को त्यागना ही मेरे लिये तुम्हारी सच्ची गुरुदक्षिणा है ।"

संतुष्टिपूर्वक सिर हिलाकर राक्षस बोला, "मैं कभी वचनभंग नहीं करूँगा । तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी । मगर एक बात याद रखो, तुम्हारे मानव लोग बहुत ही चंचल चित्तवाले हैं । तुम कभी किसी भी दिन मेरे पास लौट आकर यह स्वीकार करोगे कि तुम हार गये हो; तो मैं यह सुवर्ण तुम को सौंपकर फिर से नरमांस भक्षण शुरू करूँगा । साथ ही राज्यपर हमला करके जो भी मेरे हाथ आएगा उसको मारकर खा जाऊँगा ।"

"मैं ऐसी स्थिति पैदा होने ही न दूँगा ।" यह जवाब देकर चरणदास राजा तथा विनम्र के साथ राजधानी पहुँचा ।

चरणदास का सारा वृत्तान्त जानकर राजा विद्याधर ने अपनी इकलौती पुत्री का विवाह उस के साथ कराना चाहा ।

मगर रानी ने आपत्ति उठायी । फिर भी राजा ने समझाया—"चरणदास सब प्रकार से हमारा जामात बनने योग्य है । सज्जनता पर विश्वास उठ जाने के कारण ही वह डाकुओं के दल में शामिल हो गया था । फिर भी उसकी सज्जनता ने उसकी दुष्प्रवृत्ति को रोका और इसी कारण इसने हमारे नौकर विनम्र को डाकुओं के आक्रमण से और मुझे राक्षस का कौर बनने से बचाने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगायी । साथ ही धन के ढेरों की अपेक्षा जनता के प्राणों को अत्यन्त महत्त्व देकर उसने राक्षस से प्राप्त होनेवाले सुवर्ण के ढेरों को अस्वीकार किया है । इससे बढ़कर हमारे इस देश के भावी राजा के लिये क्या योग्यता चाहिये ?"

ये सारी बातें सुनकर रानी के मन में भी यह विश्वास पैदा हुआ कि उसकी पुत्री के लिये चरणदास से बढ़कर उत्तम वर नहीं मिल सकेगा ।

थोड़े दिन बाद ही राजकुमारी के साथ चरणदास का विवाह बहुत ही वैभवपूर्वक और धूमधाम से संपन्न हुआ ।

जगन्नाथ एक नामवर धनवान आदमी था। वह प्रतिवर्ष अपने नौकर जोगिन्दर को साथ लेकर पड़ोस के गाँव में संपन्न होनेवाले देवी के उत्सव को देखने जाया करता था।

जोगिन्दर बराबर देखता रहा कि देवी के उत्सव में भाग लेने आनेवालों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। उस गाँव में यात्रियों के लिये किसी तरह की सुविधाएँ उपलब्ध न थीं। वे बराबर अनेक प्रकार की मुसीबतों का शिकार बन जाते थे। इस बात से जोगीन्दर का दिल कसक उठता।

एक साल जोगीन्दर यथाक्रम जब देवी के उत्सव में पहुँचा, तब उसने मन्दिर के न्यासी से मिलकर निवेदन किया, "महानुभाव, मैं ने थोड़ा बहुत धन संग्रहित किया हुआ है। मैं अब अधिक दिन नहीं जिऊँगा और संभवतः इस धन का मेरे लिये कोई उपयोग नहीं है। इसलिये इस धन से आप उत्सवों में आनेवाले लोगों के लिये जितने दिन बन सके एक प्याऊ चलाइये। यात्रियों की सुविधा होगी। आप अगर इससे अधिक उपयोगी कोई और काम करवा सकते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैंने केवल अपना सुझाव दिया है। आप मेरी इस छोटी पूँजीका जो भी उपयोग करना चाहें करें।" यह कहकर पैसों की थैली जोगीन्दर ने न्यासी के हाथ में थमा दी।

जोगीन्दर ने यह जो सत्कार्य किया, उसकी चर्चा जहाँ-तहाँ होने लगी। आखिर यह बात जगन्नाथ के कानों तक पहुँची। उसने तत्काल गाँव के बुज़ुर्गों को बुलवाकर घोषणा की, कि जगन्नाथ शीघ्र ही देवी के उत्सव में आनेवाले यात्रियों की सुविधा के लिये एक सराय का निर्माण करनेवाला है।

फिर क्या था ! गाँव के आबाल-वृद्धों ने जगन्नाथ की दानशीलता की बड़ी तारीफ़ की।

रत्नाबाई

इस घटना के चन्द दिन बाद जोगींदर बीमार हुआ और वह स्वर्ग सिधार गया। दूसरे साल जगन्नाथ पड़ोस के गाँव के उत्सव में गया। उस गाँव के लोगों ने जगन्नाथ का परामर्श करके कहा, "आप का नौकर जोगीन्दर कैसा पुण्यात्मा था! उसने जो दान दिया है, उस धन से देवी के उत्सव में आये सैकड़ों लोग अपनी प्यास बुझा रहे हैं। अब तक देवी के उत्सव में पीने के पानी के बिना यात्रियों को बहुत तकलीफ़ होती थी। सब लोग पानी पीकर जोगीन्दर को दुआ देते हैं।" उन्होंने और भी कई तरह से जोगीन्दर की दानशीलता की तारीफ़ की। उनकी बातें सुनकर जगन्नाथ के मन में क्रोध के साथ ईर्ष्या भी पैदा हुई। वह खीझकर बोला, "सिर्फ प्याऊ खुलवाने मात्र से ही तुम लोग जोगीन्दर को इतना अधिक याद करते हो?"

"जी हाँ! यदि वह धन न देता तो क्या यहाँ पर प्याऊ आ जाते? चाहे तो इस मन्दिर के न्यासी से पूछ लीजिए।"

जगन्नाथ खीझकर बोला, "यह बात तो मैं भी जानता हूँ। मैं खुद यहाँ एक बड़ी सराय बनवाना चाहता हूँ। हाँ, वैसे ही संदर्भ आया इसलिये पूछ रहा हूँ—मेरे मरने के बाद तुम लोग मेरे बारे में क्या सोचोगे? मैं यह बात भी तुम लोगों के मुँह सुनना चाहता हूँ।"

इसपर भीड़ में से एक वृद्ध आगे बढ़कर बोला, "महाशय, मृत व्यक्ति की जब चर्चा होगी, तब चाहे उसने कितना छोटा उपकार भी क्यों न किया हो, लोग ज़रूर उसका स्मरण करते हैं। लेकिन वह जो बड़े बड़े काम करने का संकल्प मात्र करते हैं, उसकी याद कोई नहीं करता। सुनते हैं कि यहाँ कोई कर्ण एक धर्मशाला बनानेवाला है। घोषणा हुई बहुत दिन बीत गये। अब तक काम शुरू हुआ दिखाई नहीं दे रहा है। शायद बात ही बात हो!"

वृद्ध की बातों का व्यंग्य जगन्नाथ भलीभाँति समझ गया। उसी वर्ष उसने उस गाँव में समस्त सुविधाओं से पूर्ण एक सराय का निर्माण किया और इस प्रकार उसने जनता के बीच जो वचन दिया था, उसका पालन किया।

[१२]

[युवरानी की सहायता से जयराज नक्षत्र-फल खाकर देवी के दर्शन के लिये विलय-तांडववाले मार्ग से अग्रसर हुआ। सरोवर के मध्यस्थित वृक्ष के खोखले में उतरकर वह एक और नये प्रदेश में पहुँचा।

वहाँ एक वृद्ध पुजारी से उसकी भेंट हुई। उसने सारा वृत्तान्त सुनकर जयराज को आदेश दिया कि देवी से केवल तीन ही वर माँग सकता है। आगे पढ़िये ....]

शनैः शनैः पूर्व दिशा में सूर्य का उदय होने लगा। थोड़ी ही देर में सुवर्ण व नीले रंग से युक्त सूर्य की कान्ति से वह प्रदेश शोभा से युक्त हो गया। ऐसी रंग-बिरंगी प्रभात तो जयराज ने कभी देखी नहीं थी। उस अपूर्व दृश्य को देखकर वह अतीव उल्लास में आ गया। उसके मन में एक नया-नया आनन्द छा गया, जिसकी अनुभूति पहले उसने कभी न की थी।

"ऐसा सुन्दर प्रभात मैं ने अपने जीवन में कभी नहीं देखा है। मेरी तो समझ में नहीं आ रहा है कि वास्तव में मैं इस वक्त हूँ कहाँ।" जयराज आश्चर्य में आकर बोल उठा।

"तुम अभी भौतिक विश्व के समीप ही हो। मगर यह भौतिक विश्व का अंश नहीं है। यहाँ का सूर्य न केवल प्रकाश व गरमी ही देता है, बल्कि सब कुछ प्रदान करता है। तुम्हारा हृदय यदि शुद्ध और पवित्र है, तो सूर्य तुम को ज्ञान-संपन्न बना सकता है। यहाँ के सूर्य में और भी विविध

मनोज दास

क्षमताएँ हैं। वह अलग अलग रंगों के प्रकाश निर्माण कर सकता है। यहाँ इतने भाँति-भाँति के फूल और फल हैं; वे उसी की बदौलत है। यहाँ हर रोज़ नये किस्म के फूल और फल पैदा होते हैं। उनकी शोभा देखते ही बनती है।" वृद्ध पुजारी ने समझाया।

"आप तो साधारण पुजारी नहीं बल्कि परम योगी हैं।" जयराज ने कहा।

दिव्य, सुन्दर शोभा से युक्त उस देवी की प्रतिमा के नेत्रों से आनन्दाश्रु झरने लगे। उसने प्रतिमा को साष्टांग प्रणिपात किया और फिर भक्तिपूर्वक उसकी आराधना की। फिर धीरे से मस्तक उठाकर उसने प्रतिमा की ओर देखा। मूर्ति के चरणों के सामने मुट्ठीभर फूल बिखरे पड़े देखकर उसको बड़ा अचरज हुआ, क्योंकि उसके प्रणाम करने से पहले वहाँ कोई फूल नहीं थे।

"वत्स, तुम्हें अचरज करने की कोई ज़रूरत नहीं है। तुम्हारी प्रार्थना ही इन पुष्पों के रूप में परिवर्तित हो देवी के चरणों में अर्पित है। तुमने सोचा होगा कि ये फूल कैसे पुष्पित होते हैं? शोभा, स्वच्छता और शान्ति के कारण प्रकृति में जो तड़पन पैदा होती है, वही पुष्पों के रूप में यहाँ विकसित होती है। विश्व-कल्याण और श्रेय के लिये कोई प्रार्थना करें, तो इस भूमि में शून्य से ही फूल उत्पन्न हो जाते हैं।" वृद्ध पुजारी ने कहा।

जयराज ने उसे भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा, "हे माते, सोने की घाटी में स्थित स्वर्ण-प्रतिमा में प्राण प्रतिष्ठा करो। कब से यही एक आशा लिए मैं बैठा हूँ। स्वर्ण-प्रतिमा संजीव हो गई तो उसके दर्शन करके मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। क्या मेरी इस इच्छा को आप साकार न करेंगी देवीजी?" तत्काल एक कमल का फूल देवी की वेदी पर गिर पड़ा।

"तुम्हारी प्रार्थना सफल हो गयी। शुद्ध भाव से की गई प्रार्थना कभी बेकार नहीं जाती। देवी तुमसे प्रसन्न हो गई है और उसने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। अब मैं जैसा कहूँ वैसा करो। तुम अपनी अँगूठी उतारकर स्वर्ण-प्रतिमा की उँगली में पहना दो। तब उस में प्राण-प्रतिष्ठा होगी।" पुजारी ने कहा।

इसपर जयराज के मन में यह कामना जाग

उठी, कि प्राण प्रतिष्ठा के बाद उस युवति के साथ विवाह करे तो क्या ही अच्छा होगा ! फिर भी उस ने अपनी इच्छा पर नियन्त्रण रखा । न हँस पानेवाली ज्ञानभूमि का युवराज उसके स्मृतिपटल पर उभर आया ।

"देवी, महामृग वाली भूमि के निवासियों को खुलकर हँसने का वरदान दो । क्या ही दुर्भाग्य की बात है कि यहाँ लोग मुक्त हँसी हँस नहीं सकते । हास्य से मन पवित्र और निर्विकार हो जाता है । आनंद और सुख की वृद्धि होती है । यहाँ के लोग भी हँस सके तो यह स्वर्गीय भूमि और सुन्दरतर हो जाएगी अवश्य !" विनोद ने दूसरा वर माँगा ।

देवी की प्रतिमा के हाथ से एक और कमलपुष्प वेदी पर गिर पड़ा ।

"तुम्हारी दूसरी इच्छा भी सफल हो गयी ।" पुजारी बोल उठा ।

इस के बाद जयराज ने पुनः भक्तिपूर्वक प्रार्थना कि, "माते, संतुष्ट एवम् शान्त भूमि के निवासियों को गाने की शक्ति प्रदान करो ।"

इस बार तीसरा फूल देवी के हाथ से खिसक तो गया, पर वेदी पर नहीं गिरा । बीच में ही लटककर रह गया वह ! यह देख जयराज को आश्चर्य हुआ । प्रथम दो फूलों के समान यह तीसरा फूल वेदी पर आ क्यों न गिरा ? वह बीच में क्यों लटक गया ? इसका कारण जयराज की समझ में नहीं आया । उसने पुजारी से पूछा—"महाराज, तीसरे फूल की यह अवस्था क्यों ? आप इसका कारण जानते ही होंगे । मुझे समझाने की कृपा करेंगे ?"

"संतुष्ट व शान्त-भूमि के लोगों को संगीत
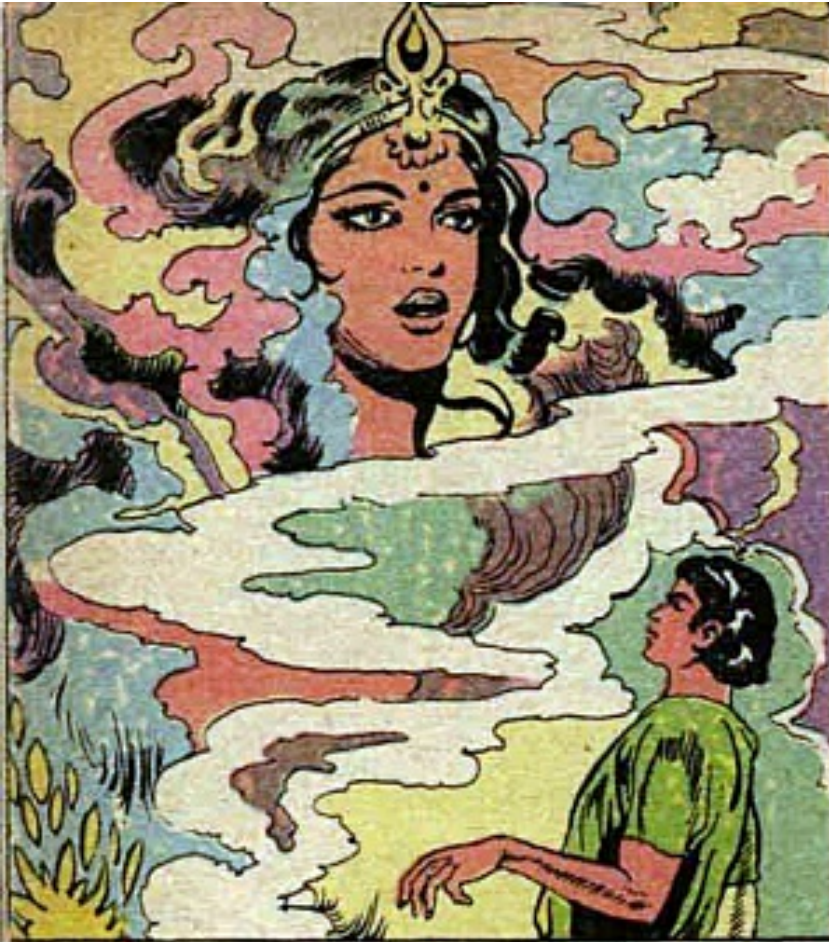
सीखने की आवश्यकता नहीं है । इस के अलावा, जिस युवरानी से तुम्हारी मुलाकात हुई, उसे छोड़कर वहाँ का कोई और व्यक्ति संगीत सीखने की कामना भी नहीं रखता । इसलिये केवल युवरानी ही संगीत सीख सकेगी ।" इन शब्दों के साथ फूल बीच में लटका रहने का कारण पुजारी ने समझा दिया ।

जयराज ने मौन धारण कर सिर्फ सिर हिला दिया। उस के मन में यह व्यथा टीस रही थी कि, उसे एक और वर माँगने का मौका नहीं रह गया। फिर भी उस के मन में यह विचार आने लगा कि एक और वर माँगने में क्या हर्ज़ है ? दूसरे ही क्षण एक विचित्र ध्वनि सुनाई दी। उसने मुड़कर देखा, पर उसे स्पष्ट रूप से कुछ दिखाई नहीं दिया। उसे लगा, उसके चतुर्दिक कोई परिभ्रमण हो रहा है । साथ ही पर्वत, घाटियाँ, नदियाँ, तड़ाग, उद्यान, भवन आदि सब अगाध में गिरते जा रहे हैं। फिर भी उसे एक दृश्य भी साफ़ नज़र नहीं आ रहा था। जयराज बेहोश हो वहीं गिर पड़ा ।

थोड़ी देर बाद उसने आँखें खोलकर देखा, तो उसने अपने को पाया—वह नीलपर्वत के उस विचित्र पौधे के पास है और सामने वह युवरानी मुस्कुराती बैठी है ।

जयराज ने उत्साह में आकर कहा, "युवरानी, मैं तुम्हारे लिये संगीत का वर लाया हूँ ।"

"मुझे यह बात मालूम है कि तुम ने अपनी यात्रा में सफलता पायी है, तभी तो तुम यहाँ सुरक्षित पहुँच पाये ।" युवरानी ने कहा ।

"अच्छी बात है । क्या अब हम एक गीत गायें ?" जयराज ने पूछा ।

"तुम सिखाओ, तो अवश्य गाऊँगी ।" उत्साह में आकर युवरानी बोली ।

जयराज मंद स्वर में गाने लगा। युवरानी भी उसका अनुकरण करते हुए गाने लगी। प्रारम्भ में वह ज़रा हकलायी, मगर बाद में वह ठीक ढंग से गाने लगी। पर वह ज्यों ज्यों गाती गयी, त्यों त्यों वह जयराज से दूर होती गयी। यह देख विनोद घबरा गया ।

गाते-गाते थोड़ी देर में वह मेघ के रूप में परिवर्तित हो उसके सामने ही अदृश्य हो गयी।

"युवरानी, युवरानी !" चिल्लाता हुआ

जयराज पागल की भाँति उधर दौड़ने लगा। घूम घूम कर आखिर वह एक स्थान पर बेहोश होकर गिर पड़ा।

"बेटे, तुम्हें यह बात नहीं भूलना चाहिये कि युवरानी का भौतिक विश्व से सम्बन्ध नहीं है। उसकी निवासभूमि के लोग अपने पास जो कुछ है, उसी से संतुष्ट हो अपना जीवन बिताते हैं। गीत गाने की कामना करने का तात्पर्य है कि आवश्यकता से अधिक की कामना करना! इस प्रकार की कामना करना साधारण मानव-प्रकृति है। इस संतुष्ट भूमि के निवासियों में केवल युवरानी ही गाने की कामना रखती थी। संभवतः वह मानव-रूप धारण करने के लिये ही उस विचित्र विश्व से अदृश्य हुई होगी।"

जयराज ने जब आँखें खोली, तब उसे ये बातें सुनायी दीं। उसने सर्व-प्रथम उसे मार्गदर्शन करानेवाले कृपालु मुनि को अपने पास बैठे देखा और श्रद्धापूर्वक उसको प्रणाम किया।

जयराज ने मुनि से पूछा, "महात्मा, इस वक्त मैं कहाँ पर हूँ?"

"तुम ज्ञानभूमि के समीप में हो। यहाँ तुम्हें अधिक समय नहीं व्यतीत करना है। तुमने जो वर प्राप्त किया है, उस से ज्ञानभूमि की जनता को हँसने की शक्ति प्राप्त हुई है। इस संतोष के साथ तुम्हें सोने की घाटी के लिये प्रस्थान करना है।" मुनि ने कहा।

"मैं कैसे जाऊँ? उस मार्ग को मैं बिलकुल भूल गया हूँ।" विनोद ने असमर्थता दिखाई।

मंदहास करते हुए मुनि ने कहा, "वत्स, तुम यह बात भी भूल गये हो कि एक जगह अदृश्य

होकर दूसरी किसी जगह पर प्रत्यक्ष होने की अद्भुत शक्ति रखते हो ! अब वह विद्या तुम्हें काम देगी । उस की सहायता से तुम अपने निवास तक पहुँच सकते हो । इसके बाद मुनि ने जयराज को मार्ग दिखाया। वह एक पहाड़पर चढ़ गया। पहाड़ के उस पार उसे ज्ञानभूमि का राज्य दिखाई दिया। राज-महल पहाड़ के नज़दीक ही था। कुछ राजभटों ने जयराज को देख उसकी रूप-रेखाओं को मिलान कर के देखा और भाग कर उन्होंने राजा को जयराज के आगमन का समाचार दिया ।

थोड़ी ही देर में राजा, युवराज, मुख्य मन्त्री राजा के प्रमुख अधिकारी—सब लोग राजभवन के ऊपरी तल पर आ गये। उत्साह पूर्वक हाथ हिलाकर उन्होंने जयराज का स्वागत किया। इतने में कुछ लोग राजमहल के बाहर पहुँच कर आनन्द से हाथ हिलाने लगे ।

सब लोग प्रसन्न-चित्त हो हँस रहे थे ।

यह देख जयराज भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसे लगा कि थोड़ी देर उन के साथ व्यतीत कर सके तो अच्छा रहेगा। मगर मुनि ने आदेश दिया— "समय बीतता जा रहा है, तुम शीघ्र सोने की घाटी की ओर प्रयाण करो ।" इसलिये जयराज ने मुनि को प्रणाम किया और उस से विदा लेकर शीघ्र ही सोने की घाटी में पहुँच जाने की कामना की और शक्ति-तरंगों में परिवर्तित होकर अदृश्य रूप में जाकर थोड़ी ही देर में वह सोने की घाटी में प्रत्यक्ष हुआ !

पूर्णचन्द्र की ज्योत्सना में विचित्र जलप्रपात अपूर्व शोभा से प्रवाहित हो रहा था। जयराज के सिरपर उड़ती हुई एक कोयल कूक उठी। कूक सुनकर जयराज का शरीर रोमांचित हुआ। इस के बाद जयराज भग्नावशेषों के बीच स्थित उस स्वर्ण प्रतिमा के समीप पहुँचा ।

'अपने हाथ की अंगूठी उतारकर सुवर्ण-प्रतिमा की उँगली पर चढ़ाने से वह सजीव हो उठेगी ! उसके बाद ?' जयराज ने उस युवती से विवाह करने का वर देवी से नहीं माँगा था; इसलिये अब उस के साथ विवाह संभव नहीं था। अब लालची राजा के चंगुल से वह अपने को कैसे बचाएगी ? इस प्रकार थोड़ी देर सोचने के बाद उसने संकल्प किया— पहले उस प्रतिमा में

प्राण तो आने दे; उसके बाद जो भी होना हो, हो के ही रहेगा ! यों विचार कर जयराज ने अपनी अंगूठी उतारकर सुवर्ण प्रतिमा की उंगली पर पहना दी। उसे यह देखने की प्रबल इच्छा थी कि स्वर्ण-प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा कैसे होती है। उसके जीवन में यह एक विशेष महत्वपूर्ण समय था। वह पूरे मनोयोग से सुवर्ण-प्रतिमा की ओर देख रहा था।

उसी क्षण उसे लगा कि जैसे बिजली कौंध उठी ! अपूर्व लावण्य की शोभा से द्युतिमान् एक स्त्री इठलाती हुई वेदीपर से नीचे उतर आयी और अप्सरा जैसी मुस्कुराती हुई आकर जयराज के बाजू में खड़ी हो गयी ! उसका अनुपम रूप और अलौकिक वेश देखकर जयराज की आँखें चौंधिया गईं। वह अचरजभरी निगाह से उसको देखता ही रह गया। ऐसे सौंदर्य का दर्शन इसके पूर्व उसने कभी नहीं किया था। थोड़ी देर के लिए वह उस रूपसी की ओर एक टक देखता रहा। उसका मन एक अपूर्व आल्हाद से भर गया, उसने एक दिव्य शांति का अनुभव किया। वह उस सुंदरी से कुछ कहना चाहता था, पर उसे शब्द नहीं मिल रहे थे। इतने में वह बोल उठी, "इस का मतलब है, अब हमारा विवाह हो चुका है।"

उस नारी का कण्ठस्वर और हँसी जयराज को एकदम परिचित सी लगी ! मगर वह स्मरण नहीं कर पाया कि उसने वह स्वर कहाँ सुना है और वह हँसी कहाँ देखी है।

"तुमने क्या कहा, हमारा विवाह हो गया है ?" जयराज ने विस्मय में आकर पूछा।

"विचित्र जलप्रपात को पार कर तुम्हारे जाने के पहले ही मेरी उँगली की अँगूठी तुम्हारी उंगली में पहुँच गई थी। अब लौटकर तुमने अपनी उंगली की वह अंगूठी फिर मेरी उँगली में पहना दी। तो फिर मतलब यही न, कि हमारा विवाह-संस्कार पूर्ण हो गया है ?" हंस कर युवती बोली।

यह विचार कर जयराज फूला न समाया कि उसने देवी से जो वर नहीं माँगा, वह इस प्रकार अनायास ही उसे प्राप्त हो गया है।

(अगले अंक में समाप्त)

महार्ण की राजकुमारी

दृढ़व्रती विक्रमार्क वृक्ष के पास लौट आये, वृक्ष पर से शव को उतारा। उसे कंधे पर डालकर हमेशा की भाँति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा— "राजन्, जो कार्य हाथ में लिया, उसे पूरा करनेका आपका संकल्प प्रशंसा के योग्य है। लेकिन मेरे मन में एक शंका नित्य बनी रहती है कि यह कार्य आप का निजी कार्य है, या किसी और ने आप को इसे करने में प्रवृत्त किया है? आँखें मूँदकर दूसरों की बातों पर विश्वास करने से हमेशा हानि ही होती है, लाभ निश्चय नहीं होता। परंतु कभी कभी परिस्थितियों के प्रभाव से भला भी हो सकता है। फिर भी आप को हमेशा सावधान रहना चाहिए। इस के उदाहरण के लिए मैं आप को महार्ण राजकुमारी कौसल्या की कहानी सुनाता हूँ। अपने परिश्रम को भुलाने के लिए यह कहानी सुन लीजिए!"

फिर बेताल कहानी सुनाने लगा—

बेताल कथा

प्राचीन काल में महार्ण देश पर एक राजा राज्य करता था, उस का नाम था कुवलयाश्व। वह बड़ा ही न्यायप्रिय तथा शांत प्रकृति का था। उसकी पटरानी सुनंदिनी बहुत घमण्डी थी। उसके रोम रोम में अहंकार भरा था।

उस दंपति के कौसल्या नाम की एक इकलौती पुत्री थी। कौसल्या बहुत अधिक रूपवती नहीं थी, पर वह अपने पिता के समान शांत स्वभाव की थी। अपनी बुद्धिमत्ता और उत्तम गुणों के कारण वह पूरे देश में लोकप्रिय थी। सभी उसकी भूरी-भूरी प्रशंसा करते थे।

कौसल्या जब विवाह के योग्य हो गई, तब राजा कुवलवाश्व ने उसके स्वयंवर की घोषणा करने का निश्चय किया। राजा के मंत्री का पुत्र सुंदरेश्वर अपने नाम के अनुसार सुंदर भी था, साथ साथ अत्यन्त मेधावी भी। उसके मन में कौसल्या से विवाह करने की इच्छा पैदा हुई। वैसे दोनों ने एक दूसरे को बचपन से खूब देखा था। एक साथ खेले थे, बातें की थीं। इधर दो-तीन वर्षों में वह सिलसिला एकदम टूटा था। सुंदरेश्वर बराबर कौसल्या के बारेमें सोचता रहता था। पर प्रत्यक्ष बातचीत करने का अवसर ही न मिला।

एक दिन कौसल्या अपनी सखियों के साथ वन-विहार कर रही थी, कि उसी समय सुंदरेश्वर वहाँ पर पहुँचा। कौसल्या ने आदर के साथ उसका स्वागत किया।

सुंदरेश्वर ने कौसल्या से विनय के साथ कहा— "राजकुमारी, मैं आप से कुछ ख़ास बात करना चाहता हूँ, इस लिए यहाँ पहुँच गया हूँ। बहुत दिनों से मैं आप के सामने अपना दिल खोलना चाहता था। पर उचित अवसर कभी मिला नहीं। अगर आप को आपत्ति न हो तो अपने मन की बात आज आपके सामने प्रकट कर दूँ? फिर भी कुछ आग्रह नहीं है। आप की इच्छा न हो तो मैं चला जाऊँगा।"

कौसल्या को बड़ा आश्चर्य हुआ, पर उसे प्रकट न करते हुए उसने अपनी सखियों को ज़रा दूर जाने का आदेश दिया। बाद इसके कौसल्या और सुंदरेश्वर एक लता-मंडप में जा बैठ गये। थोड़ी देर के लिए दोनों चुपचाप एक दूसरे की ओर देखते भर रह गये। कौसल्या प्रतीक्षा करती

रही कि सुंदरेश्वर कुछ कहना प्रारंभ करेगा। फिर उसीने पूछा— "कहिए, क्या ख़ास बात करते यहाँ तक पधारने के कष्ट उठाये ?"

सुंदरेश्वर ने नम्र शब्दों में निवेदन किया— "राजकुमारी, महाराजा कुवलयाश्व आप के स्वयंवर की घोषणा करना चाहते हैं। बचपन से ही हम दोनों के बीच गहरा स्नेह रहा है। मैं चाहता हूँ कि वह स्नेह दृढ बन जाए। मैं जानना चाहता हूँ कि आप इसको स्वीकार करती हैं या आपका कुछ और विचार है ?"

सुंदरेश्वर का प्रस्ताव सुनकर कौसल्या थोड़ी देर तक सोच में पड़ी, फिर सिर उठाकर धीरे से बोली— "मित्र, मेरी स्वीकृति या अस्वीकृति प्रकट करनेसे पहले मुझे आप से कुछ ख़ास बातें करनी हैं।"

"वे कौन-सी बातें हैं ?" सुंदरेश्वर ने आश्चर्य में आकर पूछा।

"सब कुछ बताये देती हूँ, ग़ौर से सुनिए।" कौसल्या ने अपना निवेदन शुरू किया— "ज़माने पहले कुवलयाश्व के पिता गोविन्द मिश्र महार्ण देश पर शासन करते थे। चन्दन देश के राजा लक्ष्मण वर्मा उनके बाल-सखा थे। कुवलयाश्व जब विवाहयोग्य हुए तब लक्ष्मणवर्मा ने अपनी पुत्री सुनन्दिनी की प्रतिमा गोविन्द मिश्र के पास भेजी और कुवलयाश्व के साथ उसके विवाह की इच्छा प्रदर्शित की। सुनन्दिनी असाधारण सुंदरी थी। गोविन्द मिश्र ने इस रिश्ते को पसंद किया। कुवलयाश्व ने भी अपनी स्वीकृति दी। विवाह के बाद पिता-पुत्र की समझ में आया कि सुनंदिनी का केवल शरीर सुंदर है, मानसिक दृष्टि से वह निरी मूर्ख है। विवश होकर दोनों चुप रह गये। शादी तो कर ली थी। अब कर भी क्या सकते थे। सुनंदिनी पूरी अरसिक थी, उसके साथ मीठी मीठी बातें करना बेकार था। बेचारा कुवलयाश्व निराश होकर रह गया।

एक बार कुवलयाश्व शिकार खेलने जंगल में गया। एक सिंह का पीछा करते हुए अपने लोगों से दूर निकल गया। आखिर खीझकर उसने सिंह पर बाण चलाया। ज़ख़मी सिंह ने गुस्से में आकर कुवलयाश्व के घोड़े पर आक्रमण किया और अपने पंजे के झपट्टे से उसको मार डाला। इस पर कुवलयाश्व ने म्यान से तलवार निकालकर

सिंह पर वार किया। आखिर उसने सिंह को मार तो डाला, पर उसके पंजे की मार से वह बुरी तरह घायल हो गया।

उसी हालत में कुवलयाश्व वहाँ से थोड़ी दूर तक पैदल चला, पर और अधिक चल न पाया। अखिर बेहोश हो एक जगह गिर पड़ा। पास ही में परांकुश मुनि का आश्रम था, जहाँ मुनि तपस्या कर रहा था। उसकी पुत्री रेवती आश्रम के प्रांगण को साफ़ कर रही थी। उसने कुवलयाश्व के गिरने की आहट सुनी और दौड़ी-दौड़ी वहाँ पहुँची। उस समय परांकुश मुनि अपने पूजा-पाठ में मग्न था।

रेवती झट आश्रम में गई, पानी का भरा घड़ा ले आई और कुवलयाश्व के मुँह पर ठंडा जल छिड़क दिया। तत्काल कुवलयाश्व की आँखें खुल गईं, रेवती ने उसे सहारा दिया और आश्रम के भीतर ले गई।

रेवती ने कुवलयाश्व के घावों को गीले वस्त्र से पोंछ लिया और उन पर किसी औषधी वनस्पतियोंका रस निचोड़ा। एक प्याली गरम दूध उसे पिलाया।

कुवलयाश्व रेवती की रूप-सुंदरता पर मुग्ध हो गया। उसके आदरातिथ्य से भी वह प्रसन्न हुआ। कुवलयाश्व ने कहा— "सुन्दरी, तुम कौन हो? इस जंगल में कैसे रहती हो? तुमने मेरे लिए जो कुछ किया, उसके लिए कृतज्ञ हूँ।" थोड़ी देर बाद मुनि परांकुश उपस्थित हुए, पूछताछ कर कुवलयाश्व का सारा वृत्तान्त जान लिया।

कुवलयाश्व ने वह रात वहीं पर बिताई। दूसरे दिन सुबह तक वह भला चंगा हो गया। उसने परांकुश मुनि के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और ऋषि-कन्या रेवती के साथ विवाह करने की अपनी इच्छा प्रकट की। मुनि ने प्रसन्नता के साथ इसे स्वीकार किया। कुवलयाश्व ने गांधर्व-विधि से रेवती के साथ विवाह संपन्न किया। उसी दिन दोपहर तक कुवलयाश्व के लोग वहाँ तक पहुँच गये। रेवती को साथ लिये कुवलयाश्व राजधानी में पहुँचा।

गोविन्द मिश्र अपनी छोटी बहू के व्यवहार पर बहुत प्रसन्न हुआ। कुवलयाश्व को तो रेवती का स्वभाव एकदम पसंद आया। सुनंदिनी के साथ जो सुख उसे नहीं मिल पा रहा था, वह रेवती ने पूरा पूरा दिया। दोनों घंटों तक बातचीत करते

रहते, विविध खेल खेलकर अपना मनोरंजन करते। कभी रेवती के संगीत से कुवलयाश्व मंत्र-मुग्ध-सा हो जाता। इधर रेवती की सपत्नी सुनंदिनी ईर्ष्या से भर उठी।

यों कुछ दिन बीत गये। सुनंदिनी गर्भवती बन गई। उसी समय रेवती भी गर्भवती हो गई। इस समाचार को पाकर सुनंदिनी का दिल और भी ईर्ष्या से भर गया। सुनंदिनी ने सरयू नाम की दासी से कहा कि वह कुछ ऐसा उपाय करे जिससे रेवती का गर्भपात हो जाए। वृद्धा सरयू को सुनंदिनी की बातें सुनकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। फिर संभलकर बोली— "माई, अंकुर को तोड़ने में कौन बड़ी बात है। फूल को खिलने दो, फिर तोड़कर नाले में फेंक देंगे।" इस प्रकार अपनी चातुरी का प्रयोग करके सरयू ने सुनंदिनी को मनवा लिया।

उसके बाद सरयू रेवती के अंतःपुर पहुँची। सरयू की बेटी मालिनी रेवती की दासी थी। सरयू ने मालिनी को सारा समाचार सुनाया और चेतावनी दी कि वह रेवती और उसके होनेवाली संतान की सुरक्षा में पूरी सावधानी बरते। रेवती तथा सुनंदिनी के प्रसव के दिन समीप आये।

एक दिन एक साथ ही रेवती तथा सुनंदिनी की प्रसव-पीड़ा शुरू हो गई। सरयू ने अपनी योजना को सफल बनानेके विचार से रेवती तथा सुनंदिनी को अगल-बगल के कमरों में रखवा दिया।

कुछ समय बाद रेवती और सुनंदिनी दोनों ने पुत्रियों को जन्म दिया। लेकिन प्रसव के कुछ ही मिनट बाद रेवती को सन्निपात हुआ और वह कालकवलित हो गई। अब सरयू को लगा जैसे उसके सिर पर गाज गिर गई। पर थोड़ी देर में वह संभल गई और उसने रेवती की लड़की को सुनंदिनी की बगल में और सुनंदिनी की लड़की को रेवती के बिस्तर पर पहुँचवा दिया। कुवलयाश्व के आने के पहले ही यह शिशुओं का अदल-बदल संपन्न हो चुका था।

सुनंदिनी जब होश में आई तो रेवती की मृत्यु का समाचार पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो गई। उसने गुप्त रूप से सरयू को आदेश दिया— "अच्छा हुआ, सौत को भगवान ही छीन ले गया, अब उसकी लड़की को ग़ायब करने की ज़िम्मेदारी तुम्हारी है।"

"हाँ, हाँ माईजी !" कह कर वृद्ध दासी रेवती की बगल में बदलकर रखी हुई सुनंदिनी की बच्ची को लेकर एक संतानहीन कुंभकार के मकान के आगे लिटाकर वापस आई ।" यों कहकर कौसल्या सुंदरेश्वर के मुख की ओर देखकर मुसकरा उठी ।

कौसल्या ने अपनी कहानी पूरी करते हुए कहा— "इस प्रकार सुनंदिनी के पास पहुँचायी गई रेवती की पुत्री मैं ही हूँ । रानी सुनंदिनी की पुत्री, अर्थात् मेरी दीदी कुंभकार गुरुराज की पुत्री के रूप में पल रही है । यह रहस्य मुझे वृद्धा दासी की पुत्री मालिनी ने उत्साह में आकर कहा था । यह सारा क़िस्सा मैंने आपको इस लिए सुनाया कि मैं शीघ्र ही सुनंदिनी देवी को यह सब वास्तव वृत्तान्त बता देना चाहती हूँ । इस हालत में मेरे साथ विवाह करनेवाले व्यक्ति को मेरे कारण राज्य की प्राप्ति नहीं होगी ।"

सुंदरेश्वर विस्मय के साथ कौसल्या की कहानी सुन रहा था । अब उसके चेहरे पर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक संतोष दिखाई दिया । वह उठ खड़ा हुआ और जाते जाते उसने कौसल्या से कहा— "आप की बातों का मर्म मैं भली भाँति समझ गया । अब मैं चलता हूँ कौसल्या ।"

दूसरे दिन दोपहर को गेरुए वस्त्र पहने, कंठ में रुद्राक्षमाला डाले, लंबी दाढीवाला एक साधु सुनंदिनी के महल के द्वार पर आ खड़ा हुआ और चिल्ला उठा— "जय परमेश्वर की । माते सुनंदिनी देवी, हम भूत, भविष्य और वर्तमान के ज्ञाता त्रिकालदर्शी साधु हैं । आपका भविष्य बताने आपकी सेवा में हाज़िर हो गये हैं ।"

सखियों ने यह पुकार सुनी तो वे दौड़ी-दौड़ी सुनंदिनी के पास गयी और उसको साधु के आगमन का समाचार सुनाया । रानी ने साधु को महल में ले आने का आदेश दिया । साधु रानी सुनंदिनी के पास पहुँच गया । एक हाथ उठाकर फिर ज़ोर से चिल्लाया— "जय परमेश्वर की !" फिर रानी से पूछा— "देवी जी, आप की एक इकलौती बेटी है न ?"

सुनंदिनी ने अवहेलना के साथ हँसकर साधु से कहा— "रास्ते पर चलनेवाला हर कोई यह बात जानता है । इसमें कोई नई बात थोड़ी है ! ज्योतिष की बात क्या है ?"

साधु ने गंभीरतापूर्वक मुँह बनाकर कहा— "देवीजी, मैं कुछ और बात सुनाने जा रहा हूँ। आप अपनी बिटिया को बुलवा सकती हैं ?"

सुनंदिनी ने कौसल्या को बुलवा भेजा। चन्द लमहों में कौसल्या वहाँ आ पहुँची। कौसल्या को देख साधु ने सुनंदिनी से कहा— "यह कन्या आपकी निजी पुत्री नहीं है; रानीजी !"

सुनंदिनी चौंक पड़ी और ऊँची आवाज़ में पूछा— "क्या कहा साधु महाराज ?"

साधु ने थोड़ी देर के लिए आँखें बंद कर लीं। फिर आँखें खोलकर कहा— "यह कन्या आपकी सौत की पुत्री है। आपकी निजी पुत्री कुंभकार गुरुराज के घर में पल रही है।" साधु ने कुंभकार का सारा वृत्त व पता रानी को बता दिया।

सुनंदिनी ने अपनी एक दासी को आदेश दिया कि वह कुंभकार गुरुराज को अपनी पत्नी व बच्चों के साथ तुरन्त हाज़िर कर दे। साधु को बारीकी से देखकर कौसल्या ने झट पहचान लिया कि यह साधु और कोई नहीं है, बल्कि सुन्दरेश्वर ही है ! इस पर उसे बहुत प्रसन्नता हुई।

इस बीच कुंभकार और उसकी पत्नी वहाँ पर पहुँच गये। उनके साथ जगन्मोहिनी स्वरूपा एक कन्या भी थी, पूर्ण रूप से सुनंदिनी के रूप से मिलती-जुलती थी। उसको देखते ही सुनंदिनी ने उसे अपने पुत्री के रूप में पहचान लिया और चीख कर बेहोश हो गई।

परिचारिकाओं ने सुनंदिनी की यथोचित सेवा की। थोड़ी देर में वह होश में आ गई, तब उसने कौसल्या और अपनी पुत्री को पास में बुलाया, और आँखों में आँसू भरकर साधु से कहा— "महाराज, आपने मुझे वस्तु-स्थिति से अवगत कराया, मैं आपकी कृतज्ञ हूँ।"

साधु ने और एक बार "जय परमेश्वर की !" कहा और वह वहाँ से चला गया।

तब सुनंदिनी ने कुंभकार पति-पत्नी का आदर-सत्कार किया और उन्हें कीमती उपहार भेंट दिए। कौसल्या के द्वारा यह सारा समाचार जानकर कुवलयाश्व को प्रसन्नता हुई। इसके बाद कौसल्या की इच्छानुसार सुंदरेश्वर के साथ उसका विवाह राजोचित ढंग से संपन्न हुआ।

यह पूरी कहानी सुनाकर बेताल ने पूछा—

"राजन, सारी बातें सुचारु रूप से संपन्न हुई; इस लिए कोई अनहोनी बात नहीं हुई। यदि सुंदरेश्वर कुछ और निर्णय लेता तो कौसल्या मुसीबत में न फँस जाती ? अंतःपुर के गुप्त समाचार किसी पराये व्यक्ति पर विश्वास करके कह देना मूर्खता नहीं तो क्या ? राजा कुवलयाश्व अपनी पुत्री के स्वयंवर की घोषणा कर उसका विवाह किसी राजकुमार से करना चाहते थे, पर बाद में अपनी पुत्री की इच्छा पर मंत्री के पुत्र के साथ विवाह करने को अनुमति देना अविवेक ही नहीं तो क्या है ? मेरी इन शंकाओं का समाधान आप जानकर भी अगर न देंगे तो आप का सिर फटकर उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे।"

इस पर विक्रमादित्य ने कहा— "यदि सुनंदिनी किसी दासी के मुँह से सुन लेती कि कौसल्या किस की पुत्री है, तब कौसल्या अवश्य मुसीबत में फँस जाती ! ऐसे खतरे से बचने के लिए ही उसने अपने साथ विवाह करने की इच्छा रखनेवाले सुंदरेश्वर के सामने अपना रहस्य प्रकट किया। इस प्रकार उसने न केवल सुंदरेश्वर की ईमानदारी तथा बुद्धि-कुशलता की परीक्षा ली, साथ ही अपनी भी रक्षा की। सुंदरेश्वर भी बड़ा मेधावी था। कौसल्या द्वारा कथित रहस्य को जानने पर अब क्या करणीय है, इस पर उसने भली भाँति सोचा और एक योजना कायम की। सुनंदिनी को रहस्य बताने की ज़िम्मेदारी उसने स्वयं कर ली। राजा ने अपनी पुत्री का विवाह मंत्री के पुत्र के साथ कराया, इसमें भी उनका असाधारण विवेक तथा लौकिक व्यवहार-कुशलता का प्रदर्शन होता है। जब सुंदरेश्वर को मालूम हुआ कि कौसल्या राज्य की वारिस नहीं हो सकती, तब उसने साधु का वेष धारण कर कौसल्या के द्वारा जाने रहस्य को सब के सामने सुनंदिनी को बताया और उसके व्यवहार में यथोचित परिवर्तन ला दिया। ऐसा साहस कोई विरला हिम्मतवाला और प्रज्ञावान ही कर सकता है।"

इस प्रकार राजा के मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पुनः पेड़ पर जा बैठा।

चन्दामामा पुरवणी—१

ज्ञान का ख़ज़ाना

इस मास का ऐतिहासिक महापुरुष

गुरु नानक

१४६९ के कार्तिक (नवंबर) मास की पूनम के दिन पंजाब के नानकाना स्थान पर नानक पैदा हुए। दरअसल उनके नाम पर वह स्थान नानकाना कहलाया।

पाठशाला में अध्यापक जितने सवाल पूछते उनसे अधिक वे अपने अध्यापकों से पूछा करते थे। उनके प्रश्न परमेश्वर और सत्य के संबंध में हुआ करते। १४ साल की उमर में पिता ने उनकी शादी करायी और नौकरी के लिए उन्हें सुलतानपुर भेजा। अपनी कमाई का अधिकतर हिस्सा वे ग़रीबों को बाँट दिया करते। संसार के रोज़मर्रा के काम उन्हें संतोष न दे सके। उन्होंने नौकरी छोड़ दी और इस बात का प्रचार करते हुए यात्रा शुरू की कि 'भगवान एक है और उसके सामने सब समान हैं।' उन्होंने प्रस्थापित किया कि सभी धर्मों का तत्व एक ही है— फिर वह हिन्दू धर्म हो या इसलाम। सर्व धर्म समभाव और परमात्मा के प्रति भक्ति उनकी प्रमुख सीख रही।

अपने अंतिम दिन उन्होंने बियास नदी के किनारे करतारपुर में बिताये। उन्होंने जिन तत्वों का प्रचार किया वे सिक्ख धर्म कहलाये। सत्तर वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ। जब उनकी मृत देह पर कफ़न डाला गया, तब हिन्दू और मुस्लिम दोनों ने उस पर अपना अधिकार जताया। जब कफ़न उठाया गया तब कुछ फूल नज़र आये। दोनों ने उनको बाँट लिया।

वह कौन ?

वह अंधेरी रात थी। नदी के किनारेवाले काली-माता के मंदिर में एक अकेले युवक ने प्रवेश किया। वह फूट-फूट कर रोया और देवी से प्रार्थना की— "आज के अपमान के बाद जीवन में मुझे बिलकुल रस नहीं रहा, मैं अभी यहीं मर जाना चाहता हूँ।"

दैवी ध्वनि सुनाई दी— "ऐसा मत करो, आत्महत्या से तुम्हारी आत्मा को क्लेश होगा।"

"ऐसा हो तो मुझे पंडित बना दो।" युवक ने बिनती की।

उस आवाज़ ने कहा— "बेटा, तुम्हारी चेतना इतनी कच्ची है कि सात जन्मों के बाद ही तुम पंडित बन सकोगे।"

"तब तो मर ही जाऊँगा।" युवक ने कहा और अपनी छाती में कटार भोंकने के लिए उसने हाथ उठाया।

कृपालु माता ने उसे ऐसा करने से रोका और उसे उसी स्थान पर लगातार सात बार मरवाया और जिलाया। एक महान् विद्वान बन कर युवक मंदिर से बाहर निकला।

इस कहानी का यह युवक कौन है ?

(पृष्ठ ८ देखिए।)

विज्ञान के मज़े
आकर्षण
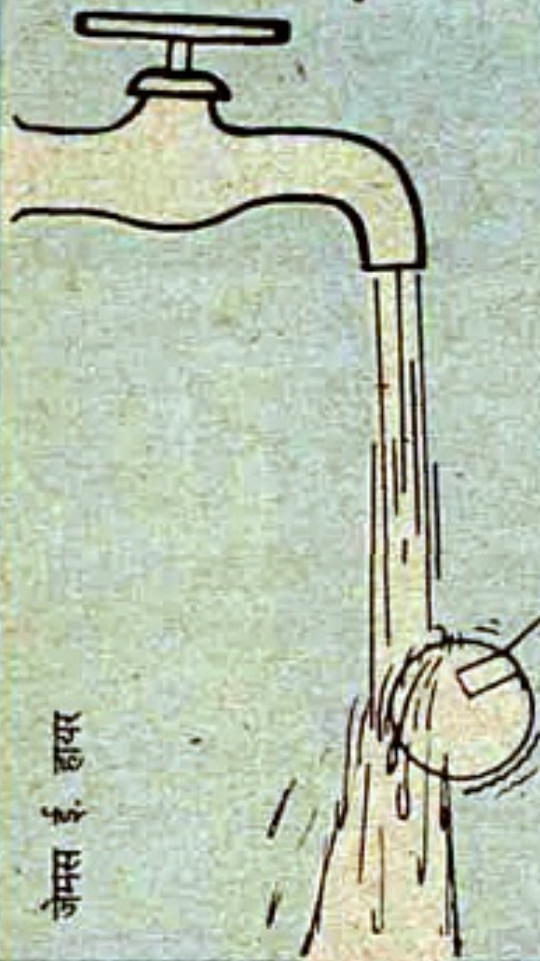
सूचनाएँ:

टेप ने सहारे एक धागे के छोर में पिंगपाँग की गेंद चिपका दें। फिर चित्र में दिखाये अनुसार उसे यों पकड़िए कि गेंद पानी के प्रवाह को स्पर्श करे, और धीरे धीरे रस्सी पकड़े हाथ को प्रवाह की दिशा में ले जाइए। बहनेवाले पानी की तरफ़ गेंद खींच जाती है ? क्या वह अंशतः प्रवाह के बीच रहती है ?

क्या होता है और क्यों ?

ऐसा लगता है कि गेंद बहनेवाले पानी की ओर आकर्षित होती है। पानी प्रवाही और गतिशील होनेके कारण ऐसा होता है। प्रवाही द्रव जिस दिशा में बहता है, उस दिशा में अधिक दाब निर्माण करता है, बाजुओं की ओर कम। इसी कारण गेंद की दूसरी बाज़ू की हवा की तुलना में प्रवाह की बाज़ू में कम दबाव रहता है।

जब पानी और अधिक तीव्र गति से बहता है तब क्या गेंद को प्रवाह से दूर ले जाना कठिन होता है ? जब पानी मंद गति से बहता है तब क्या होता है ? जब पानी अधिकाधिक तीव्र गति से बहेगा, तब गेंद को प्रवाह से बाहर निकालना कितना कठिन होगा ?

पिंगपाँग की गेंद के अलावा और गेंद के साथ भी ऐसा ही होगा ? स्वयं अनुभव लेकर खुद ही क्यों न देखें !

हवा से भरा गुब्बारा या काग़ज़ का टुकड़ा रास्ते पर पड़ा हो और कोई तेज़ चलनेवाली कार गुज़रे तब वह गुब्बारा या काग़ज़ बहुधा कार की दिशा में उड़ेगा। ठीक है न ? आप समझ गये ऐसा क्यों होता है ?

संसार के आश्चर्य

पिरामिड़

पांच हज़ार वर्ष पूर्व (या इससे भी पहले) फारो नाम के बलशाली राजा ईजिप्त देश पर राज्य करते थे। फारो की मौत पर उसका शव कुछ विशेष मसाले लगाकर शव-पेटिका में बंद किया गया। फिर शव-पेटिका को एक कब्र में स्थापित कर उस पर पत्थरों का एक विशाल स्मारक बनाया गया। उसकी नींव आयताकार थी, और चारों बाजुओं पर बने ढलानवाले त्रिभुज शिखर पर मिले हुए थे।

आज विद्यमान पिरामिड़ों में से तीन आश्चर्य़जनक पिरामिड़ कायरो शहर के पासवाले रेगिस्तान पर खड़े हैं। उनमें सम्राट खुकू या केऑप्स का पिरामिड़ सब से प्राचीन और विशाल है। माना जाता है कि मनुष्य द्वारा निर्मित यह विशालतम वास्तु है।

रोम का सुप्रसिद्ध सेंट पीटर्स चर्च, वेस्ट मिन्स्टर अॅबे और तीन बड़े चर्च के समान विशाल क्षेत्र पर यह पिरामिड़ स्थित है। इसे बनाने में १००,००० लोग २० साल तक खपते रहे। यह सब लगभग ४,७०० वर्ष पहले की बात है।

वर्तमानकालीन एक लेखक एरिक वॉन डैनिकर्स कहते हैं— "आज बीसवीं सदी में दुनिया के सारे देशों के तक़नीकी साधनों के उपलब्ध होते हुए भी कोई शिल्पकार केऑप्स पिरामिड़ जैसी वास्तु नहीं निर्माण कर सकेगा।"
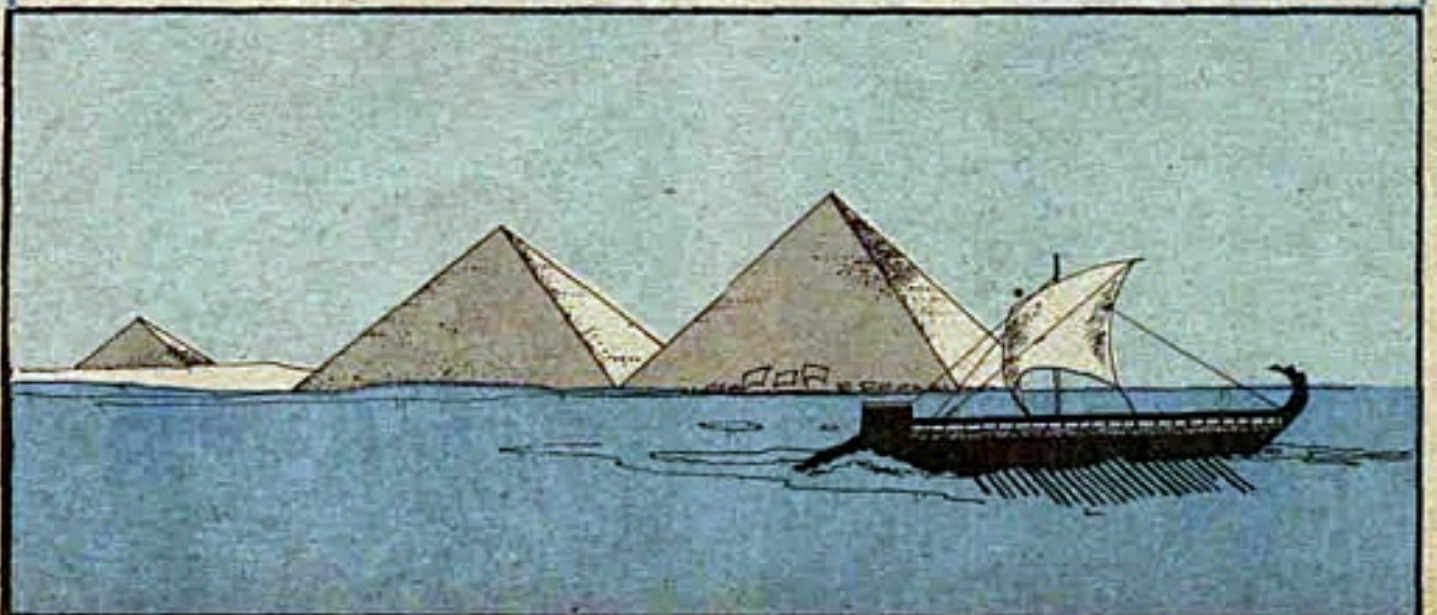
मोझेस के चमत्कार

हज़ारों साल पहले की बात है। ईजिप्त के फारो की बेटी नील नदी में नहा रही थी। उसने आश्चर्य से देखा, टोकरी में तीन मास की उमर का लड़का बहता आ रहा है। राजकुमारी ने उसे बचा लिया।

उन दिनों हीब्रू (ज्यू) लोगों की आबादी ईजिप्त में बढ़ रही थी, इस लिए फारो इन बच्चों को डुबा देने पर तुला था। राजकुमारी ने जान लिया कि जिन अनगिनत बच्चों पर यह अत्याचार हो रहा है, उन्हीं में से एक यह है।

बच्चे की बहन दूर से यह सब देख रही थी। वह राजकुमारी से मिली और उस बच्चे की देखभाल करनेका काम उसने माँग लिया। राजकुमारी ने उस लड़की को बच्चा दे दिया; बाद में वह उसे अपनी माँ के पास ले गई। इस तरह बच्चे की अपनी माँ दाई-माँ बन गई। राजकुमारी की छत्र-छाया में बच्चा निर्भय होकर बढ़ने लगा।

ईजिप्त के लोग हीब्रुओं के साथ बड़ा दुर्व्यहार करते थे। उनसे गुलाम का-सा काम करवाया जाता और छोटी छोटी बात पर उन्हें बुरी तरह परेशान किया जाता, मार दिया जाता।

ओल्ड टेस्टामेंट (पवित्र बायबल) के 'एक्झोडस' नामक अध्याय में मोझेस की कथा का वर्णन है। पेड़-पोधों के एक झुरमुट पर आग लगी थी, पर वे पेड-पौधे जले नहीं; वहाँ मोझेस को परमात्मा के दर्शन हुए। भगवान ने मोझेस को हीब्रू लोगों का नेता बनने का आदेश दिया। लोग उस पर विश्वास करें इस लिए भगवान ने उसे चमत्कार दिखाने की कला सिखा दी।

मोझेस ने फारो से प्रार्थना की, कि वह हीब्रू लोगों को ईजिप्त छोड़ जाने की इजाज़त दें। पर फारो ने नहीं माना। फिर मोझेस ने कई चमत्कार दिखाये। नदी का पानी खून बन गया, सारे देश में मेंढ़क और टिड्डी-दल भर गये। एक ज़बरदस्त आँधी आयी और खड़ी फ़सलों को नष्ट कर गई। फिर प्लेग का प्रकोप हुआ। अन्त

में ईजिप्त के लोगों की प्रथम संतान मरने लगी। तब जाकर फारो ने हीब्रुओं को अपना देश छोड़ने दिया।

मोझेस अपने लोगों को इस्राइल ले गया। सामने लाल समुद्र आ गया। समुद्र दो हिस्सों में बँट गया और मोझेस तथा उसके अनुयायी बीच में से चले गये। ईजिप्त के कुछ लोगों ने फिर भी हीब्रुओं का पीछा किया। समुद्र में बने सूखे रास्ते पर वे आ गये, तो समुद्र फिर मिल गया और ईजिप्त के लोग डूब गये।

हीब्रू अपने नये देश में पहुँच गये, पर मोझेस ने वहाँ कदम रखने से पहले ही अंतिम साँस ली।

इस घटना का कुछ अंश इतिहास समझा जाता है। इस प्रकार एक नये राष्ट्र की स्थापना हुई।

भारत के अतीत में झाँक कर देखें

१. कौनसी प्राचीन नगरी का नाम दो नदियों के नामों से बना है ?

(अ) इन दो नदियों के नाम क्या हैं ?

(ब) ये दोनों किस बड़ी नदी में मिल जाती हैं ?

(क) यह नगरी किस के लिए प्रसिद्ध है ?

२. अपनी माँ के खानदान के आधार पर बना नाम जिसको पसंद था, ऐसा भारत का प्रसिद्ध जेता कौन ?

(अ) वह कब भारत आया ?

(ब) उसने जिस घराने को बनाया, उसका नाम क्या है ?

(क) उसका सुप्रसिद्ध पूर्वज कौन था ?

३. अकबर के राज्य के सरकारी दफ़्तर का नाम क्या था ?

(अ) उसका लेखक कौन था ?

(ब) उसके दूसरे ग्रंथ का नाम क्या था और वह पहले ग्रंथ से कैसे अलग था ?

४. प्राचीन काल में दक्षिण भारत पर शासन करनेवाले तीन प्रसिद्ध खानदान कौन-से हैं ?

(पृष्ठ ८ देखिए ।)

विज्ञान, आविष्कार और खोज की दुनिया

१. निऑन लाइट का आविष्कार किसने किया और कब ?

२. आसमान में चमकनेवाली बिजली का विद्युत के परिमाण में क्या नाप है ?

३. हमारा यह विश्व कितना प्राचीन है ?

४. दूरबीन का आविष्कार किसने किया और कब ?

५. क्या सूर्य हर समय पृथ्वी से एक-सी ही दूरी पर होता है ?

६. क्या उड़न-तश्तरियाँ दिखाई देने का कोई ख़ास मौसम होता है ?

७. किस देश में सब से अधिक समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं ?

८. मनुष्य के हाथ के एक वर्ग इंच क्षेत्र में कितने नस-तंतु होते हैं ?

९. ऊँट की अपेक्षा अधिक लंबे समय तक बिना पानी के रह सकनेवाला और कौन-सा प्राणी है ?

१०. किस जानवर की बू एक मील की दूरी से महसूस होती है ?

(पृष्ठ ८ देखिए ।)

१. भारतीय धर्म-ग्रंथों में कौन सब से अधिक पढ़ा जाता है ? वह किस शैली में कथन किया गया है ?

(अ) उस ग्रंथ के कितने अध्याय हैं ?

(ब) वह किस बृहत् ग्रंथ का अंश है ?

(क) कौन ऋषि उस ग्रंथ के लेखक माने जाते हैं ?

२. भारत के महान् नाटककार और कवि कौन हैं जिनका मूल नाम ज्ञात नहीं है ?

(अ) वे किस नाम से मशहूर है और वह नाम उनको क्यों मिला ?

(ब) उन्होंने कौन कौन से नाटक लिखे ?

(क) उनके काव्य-ग्रंथ कौन कौन-से हैं ?

३. एक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार किसी स्त्री ने एक शहर को धूल में मिलाया। वह कौन-सा शहर है ?

(अ) वह स्त्री कौन थी ?

(ब) उस ग्रंथ का नाम क्या है ? उसका लेखक कौन था ? वह किस भाषा में लिखा गया है, और कब लिखा गया ? (पृष्ठ ८ देखिए।)

सभी भारतीय भाषाओं का एक शब्द सीख लें !

आसामी: छात्र; **बंगला:** छात्र; **अंग्रेज़ी:** स्टूडंट; **गुजराती:** विद्यार्थी; **हिंदी:** छात्र; **कन्नड़:** विद्यार्थी; **काश्मीरी:** शागिर्द; **मलयालम:** विद्यार्थी; **मराठी:** विद्यार्थी; **ओरिया:** छात्र; **पंजाबी:** विद्यार्थी; **संस्कृत:** विद्यार्थिन्; **सिंधी:** शागिर्दु; **तमिळ:** मानवन; **तेलुगु:** विद्यार्थी; **उर्दू:** तालिब-इल्म ।

आपको विश्वास है ?

* कि किसी बाहरी भू-खण्ड से आर्य भारत में आये ?
* कि बाहर से अमेरिका पहुँचनेवाला सब से पहला आदमी कोलंबस था ?
* कि अपने पेट पर ज़ेब केवल कंगारू के ही होती है ?

नहीं, नहीं ! .

* आश्चर्य है, इस विचार-धारा के लिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। यह केवल कल्पना मात्र है।
* नहीं। नार्वे का बहादुर लीफ़ एरिकसन ने सन १,००० में अमेरिका की खोज की।
* नहीं। यह विशेषता रखनेवाले कुछ और जानवरों में कंगारू एक है। अन्य जानवर हैं— काला रीछ, आप्पोसम और वोम्बॅट। और भी कुछ ऐसे जानवर हैं।

उत्तरावलि

वह कौन ?

महाकवि कालिदास। प्रचलित जनश्रुति के अनुसार वह बड़ा ही बुद्धू था। एक राजकुमारी ने घोषित किया था कि वह उस विद्वान से शादी करेगी जो विद्वत्त में उस से बढ़कर हो। उसने कई विवाहाकांक्षियों को अस्वीकृत किया। अपने अपमान का परिमार्जन करनेके लिए उन्होंने कालिदास को ढूँढा (जिसके मूल नाम का पता नहीं है) और राजकुमारी को बताया कि वह एक महान् विद्वान है। राजकुमारी ने उससे विवाह किया और तब जाकर उसे सत्य का पता चला। उसने उसे निकाल दिया शेष कहानी आप जानते ही हैं।

इतिहास

१. वाराणशी
(अ) वरुणा और आशी, (ब) गंगा में, (क) शिव-मंदिर के लिए जो विश्वनाथ कहलाता है।
२. बाबर। माँ के खानदान मोंगोल के आधार पर वह मुग़ल कहलाया।
(अ) सन १५२६ में, (ब) मुग़ल खानदान, (क) मोंगोल प्रमुख—चेंगिझ खान।
३. अकबरनामा
(अ) अबुल फ़ज़ल, (ब) ऐन-इ-अकबरी। अकबर के राज्य से संबंधित विविध संख्याएँ व जानकारी इसमें संग्रहित है।
४. चोल, पाण्ड्य और चेर।

विज्ञान

१. फ्रेंच वैज्ञानिक जॉर्ज क्लाउद। ३ दिसंबर १९१० को पॅरिस की एक मोटरप्रदर्शनी में उन्होंने इसे पहली बार दिखाया।
२. उसकी विद्युत-ऊर्जा ७,७४० किलोवाट हो सकती है।
३. १५ से २० बिलियन वर्ष।
४. मिडलबर्ग के एक ऐनक के व्यापारी हॅन्स लिप्परशे ने यह आविष्कार किया। उसने २ अक्तूबर १९०८ को इसे दिखाया। लगता है, उसका एक मददगार लड़का लेन्सों के साथ खेल रहा था, तब उसे यह कल्पना सूझी।
५. नहीं। उष्णकाल की अपेक्षा शीतकाल में वह ३ मिलियन मैल निकट आती है।
६. कारण चाहे जो हो, उपलब्ध संख्याओं के आधार पर मंगल जब पृथ्वी से निकटतम होता है तब अधिक उडन-तश्तरियाँ दिखाई देती हैं।
८. अमेरिका के संयुक्त राज्य। दुनिया की आधी पत्रिकाएँ यु.एस्.ए. और कॅनडा में मिलकर प्रकाशित होती हैं।
८. ८० फुट लंबे नस-तंतु।
९. जिराफ।
१०. स्कंक।

साहित्य

१. भगवद्गीता। यह कृष्ण और अर्जुन के बीच का संवाद है। (अ) अठारह, (ब) महाभारत (भीष्म पर्व), (क) व्यास।
२. कालिदास।
(अ) क्योंकि काली माता की कृपा से ये विद्वान् बन गये। (ब) मालविकाग्निमित्रम् विक्रमोर्वशीयम् और अभिज्ञानशाकुंतलम्। (क) रघुवंशम्, कुमारसंभवम् और मेघदूतम्।
३. मदुरा
(अ) कण्णगी, (ब) सिलप्पदिगारम जो दो हज़ार वर्ष पूर्व राजकुमार इलंगो अड़िगल ने तमिळ में लिखी।
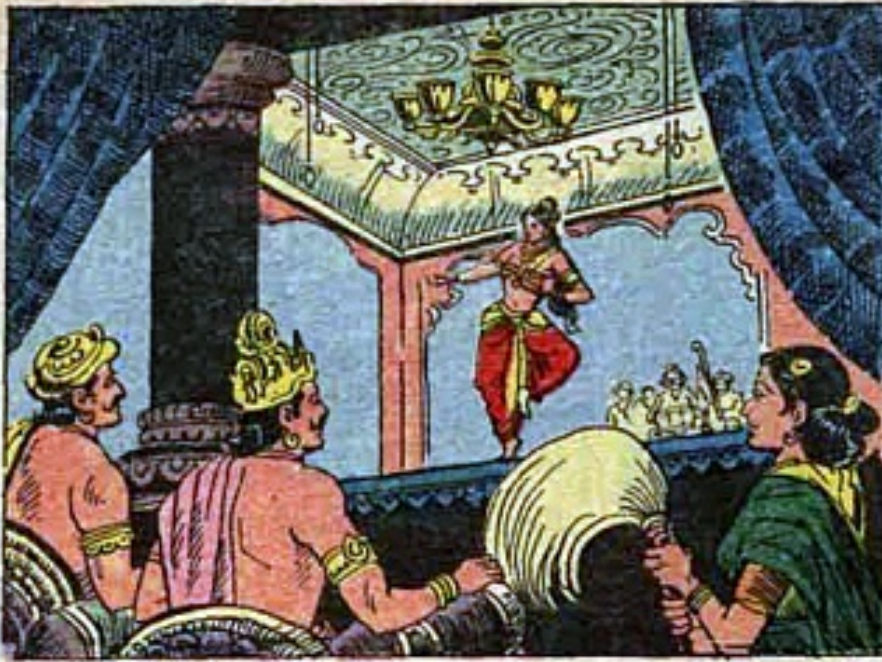
काव्य-कथाएँ

मणिमय नूपुर—२

पूंपुहार नगर के युवक व्यापारी कोवलन ने एक समुद्री व्यापारी की पुत्री कण्णगी के साथ विवाह किया। माधवी नाम की एक युवती ने अपनी नृत्य-शिक्षा पूरी की। राजा तथा नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों की उपस्थिति में नर्तकी माधवी ने अपना प्रथम नृत्य-प्रदर्शन किया।

अपनी नृत्य-कला का अद्‌भुत प्रदर्शन करके माधवी ने प्रेक्षकों को मुग्ध कर दिया। कार्यक्रम के अंत में सब ने बड़े उत्साह से तालियाँ बजा दी। और माधवी की नृत्य-कुशलता की भूरि-भूरि प्रशंसा की
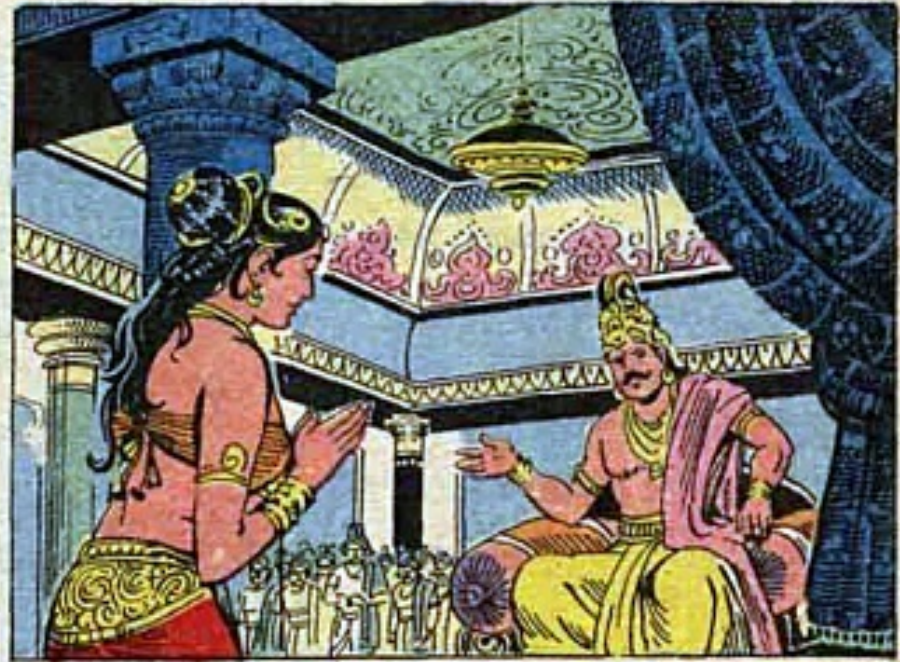
माधवी के नृत्य पर प्रसन्न होकर राजा ने एक मरकत मणि खचित माला तथा एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ पुरस्कार के रूप में दे दीं। इस पर माधवी की खुशी का ठिकाना न रहा।

उस काल पेशेवर नर्तकी कलाकारिणों में रिवाज़ था कि राजा के द्वारा पुरस्कृत माला किसी संपन्न व्यक्ति को बेच दी जाती। माधवी ने माला अपनी सखी के हाथ देकर आदेश दिया— "संध्या समय जिस मार्ग पर धनी-अमीर विचरते हैं, वहाँ जाकर इस माला का सौदा करो।"

जो व्यक्ति एक हज़ार स्वर्ण-मुद्राएँ देकर उस माला को खरीदेगा, माधवी उसका प्रिय पात्र बनेगी। केवल ऐसे ही विशेष व्यक्ति के लिए वह नाचेगी और गाएगी। ऐसा ही उस काल का आचार था। कोवलन् माधवी का नृत्य देखकर पहले ही प्रभावित हुआ था, उसने माधवी की सखी से वह हार खरीद लिया।

फिर माधवी की सखी के साथ कोवलन् उसके कला-मंदिर में पहुँचा। माधवी ने बड़े आदर और प्रेम से उसका आतिथ्य किया। अपने अपूर्व नृत्य-संगीत के द्वारा माधवी ने कोवलन् को अतीव प्रसन्न किया। माधवी के रूप-सौंदर्य और नृत्य-कुशलता पर कोवलन् मुग्ध हो गया।

वैसे कोवलन नृत्य-संगीत के आस्वाद के लिए ही माधवी के संपर्क में आया ज़रूर, पर धीरे धीरे वह उसके साथ प्रेम करने लग गया। माधवी भी उसको अपने पति-सा मानने लगी। सब कुछ भूल कर दोनों एक दूसरे के प्यार में ऐसे डूब गये कि कोवलन का अधिक समय माधवी के सहवास में कटने लगा।
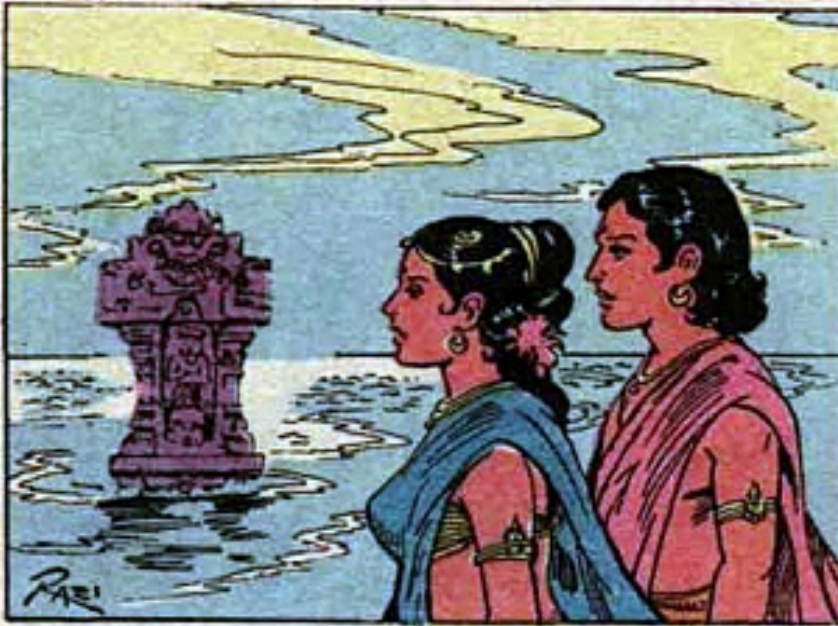
एक दूसरे के प्रेम में पगे वे दोनों कभी नगर-भ्रमण करते। शहर के विशेष दृश्यों का अवलोकन करते करते वे एक जादू-स्तम्भ पर पहुँचे। उसकी प्रदक्षिणा करने से शरीर में प्रवेश करनेवाला साँप का विष, मन की व्याकुलता तथा भूत दूर भाग जाते थे। उन्होंने उसकी परिक्रमा की।

वहाँ के उस उद्यान में एक अद्भुत मूर्ति थी। अगर देश के राजा जान-बूझकर या अनजान में ही सही अधर्माचरण करे, तो उस मूर्ति की आँखों में आँसू झर आते। इस लिए प्रजा-जन ही नहीं, राजा भी अपने शासन-कार्य में धर्मच्युत होने से बड़ी ही सावधानी बरतते थे। सर्वत्र सुख-शान्ति वर्तमान थी।
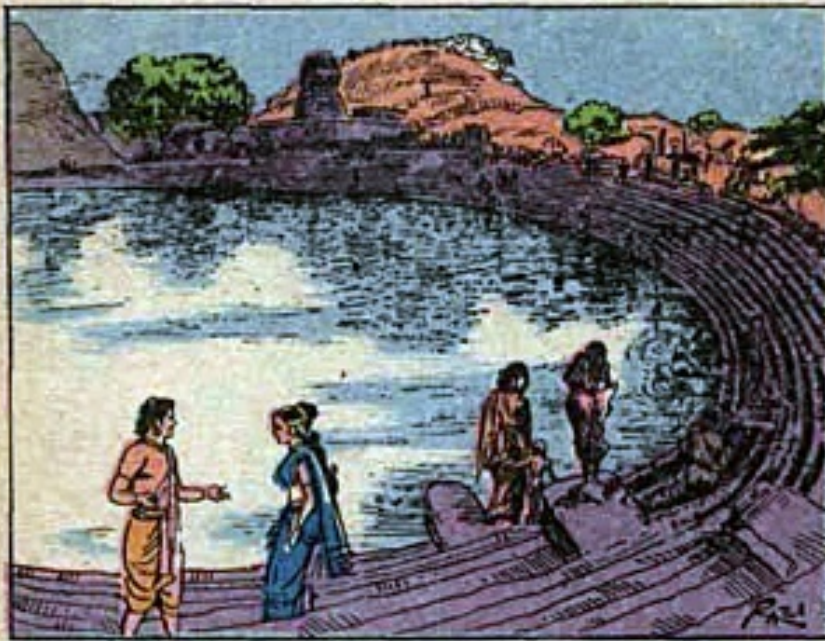
नगर के मध्यभाग में एक अद्भुत सरोवर था। लोगों का यह विश्वास था कि उस सरोवर में नहाने से सब प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। बहरे सुनने लगते हैं और गूँगे बोलने लगते हैं। इन अनेक चित्र-विचित्र दृश्यों का अवलोकन करते हुए माधवी और कोवलन् ने खुशी खुशी कुछ समय बिताया। इस प्रकार आहार-विहार में कोवलन् ने अपना सारा धन पानी-सा बहाया।

संध्या के समय ग्रीस आदि सुदूर देशों से आये जहाज़ों के दीप रत्नों की भाँति चमकते रहते। स्थानीय लोगों की नावों के दीप भी इस शोभा को बढ़ाते रहते। महल और ऊपरी तल पर ठंडी बयार का आस्वाद लेते हुए माधवी और कोवलन इस अपूर्व दृश्य को देर तक देखते रहते, संध्या रात में कब बदल जाती पता न चलता।
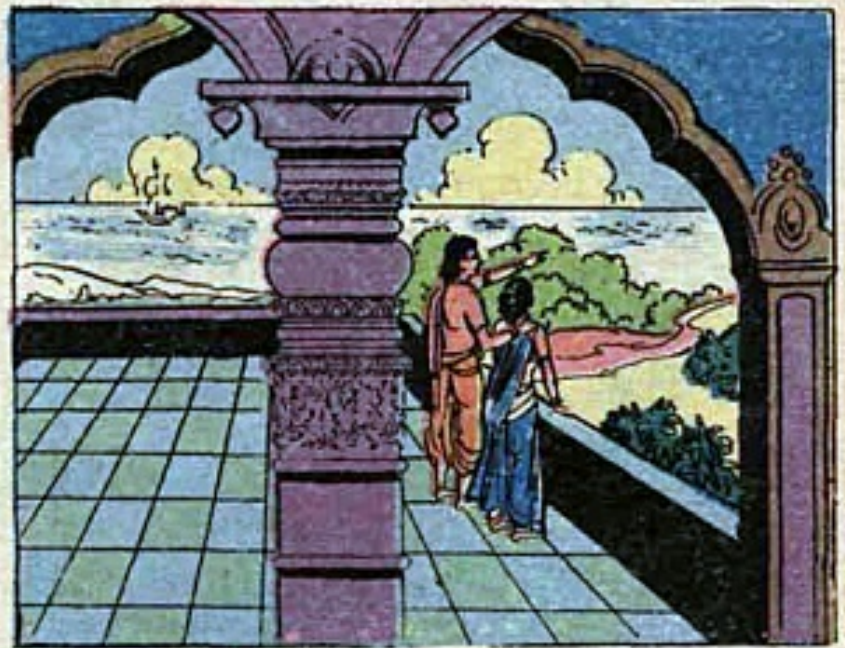
कोवलन् और माधवी इस प्रकार बड़ी खुशी में अपने दिन गुज़ार रहे थे, उधर कण्णगी घर पर बैठी चुप-चाप असहनीय पीडा महसूस कर रही थी। फिर भी अपने पति के इस दुर्व्यवहार के बारे में उसने किसी से बात नहीं की। अपने गहनों में से एक-एक को बेचकर वह अपने गृहस्थी का खर्च चलाती थी। धीरे धीरे सारे गहने घर से जाते रहे।

(सशेष)

भूतों का खेल

चन्द्रवर्मा और उसकी पत्नी सीतालक्ष्मी रामभद्रपुर की हाट से निकले और शाम तक एक नदी के पास पहुँच गये। सोचने लगे अँधेरा होने तक घर कैसे पहुँचेंगे ? आसमान की तरफ़ देखा। पूरब की ओर से काले बादल आगे बढ़ रहे थे। नदी की तरफ़ देखा—नदी का प्रवाह तेज़ बह रहा था।

आसमान पर घनी घटा छा गई। अपने गाँव दुर्गागढ़ पहुँचने के लिए और दो कोस चलना ज़रूरी था। और तब तक मूसलाधार वर्षा होने की पूरी उम्मीद थी। इस लिए पति-पत्नि सोचने लगे कि अब क्या किया जाए ? तब उन्होंने देखा कि नदी के किनारे एक पुराना-सा घर है। उस घर में कोई रहता-सा नज़र नहीं आया। एक खिड़की को खोलकर अंदर झाँककर देखा। मकान खाली पड़ा था। इतनेमें बरसात शुरु होती नज़र आई। इस लिए दोनों ने घर के अंदर प्रवेश किया।

अपनी थैलियों के साथ चन्द्रवर्मा और सीतालक्ष्मी उस पुराने मकान में घुस गए। मकान उजड़ी हालत में था और सर्वत्र सन्नाटा था। इतने में बरसात की बूँदोंकी टपटपाहट सुनाई दी। थैली से बाज़ार में खरीदा झाड़ू सीतालक्ष्मी ने निकाला और मकान के एक कमरे को साफ़-सुथरा बना दिया। इसके बाद पति-पत्नि ने अपनी थैलियाँ एक कोने में रख दी और थोड़ा आराम करने के लिए दोनों लेट गये।

बाहर बिजली की चमक और बादलों की गरज के साथ ज़ोरदार वर्षा प्रारंभ हुई। पुराने मकान की छत में लगे खपरैल जहाँ-तहाँ टूट गये थे, बरसात की पानी की बूँदें भीतर भी गिरने लगीं।

चन्द्रवर्मा अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और कमरे की खिड़की से बाहर झाँककर बोला— "बाहर घना अंधेरा छा गया है। अगर बारिश

गंगा महतानी

थम भी गयी तो इस गहरे अंधेरे में रास्ता ढूँढ निकालना मुश्किल होगा ।"

लगभग एक घंटे बाद बरसात थम गई । मकान के चारों तरफ़ फैले पानी में से मेंढ़कों की टरटराहट सुनाई देने लगी । कुछ दूरी पर गीदड़ों की चिल्लाहट चल रही थी । इस कारण इस सुनसान प्रदेश में दोनों को डर महसूस होने लगा ।

उसी समय अचानक उनकी आँखों के सामने विचित्र प्रकाश दिखाई देने लगा । दोनों ने मारे डर के अपनी आँखें मूँद लीं । थोड़ी देर बाद आँखें खोल दीं तो क्या देखते हैं— सामने प्रत्यक्ष तीन भूत खड़े हैं । भूतों को देख पति-पत्नि थर-थर काँपने लगे । दोनों की समझ में नहीं आया कि अब क्या करें ? बुरी तरह मुसीबत में फँस गये । अब तो जो कुछ होगा उसे देखने के सिवा कोई चारा न था ।

तीन भूतों में से एक ने कहा— "डरो मत, हम तुम को कोई नुक़सान नहीं पहुँचाएँगे । समय काटने के लिए हम तुम्हारे साथ घड़ी भर एक खेल खेलेंगे । बस ! "

भूतों के साथ खेल खेलने की बात सुनकर दंपति और भी भयभीत हो उठे । सारा कमरा एक विचित्र कांति से प्रकाशित हो गया था ।

उसी भूत ने फिर चन्द्रवर्मा से कहा— "तुम सावधानी से अच्छी तरह सुन लो । हम तीनों हू-ब-हू तुम्हारी बीबी का-सा रूप धारण करेंगे । तब तुम्हें पहचानना होगा कि हम चारों में से तुम्हारी असली पत्नि कौन है ? फिर एक बार जान लो—तुम्हें जान का कोई धोखा नहीं है । हम बस, सिर्फ़ खेल खेलने के लिए आये हैं ।"

उसी समय कमरे में रोशनी गुल हो गई और सब ओर अंधेरा फैल गया । कुछ क्षणों के बाद फिर रोशनी आ गई । अब चन्द्रवर्मा के सामने चार युवतियाँ खड़ी रह गईं । सभी ठीक सीतालक्ष्मी जैसी दिखाई दे रही थीं ।

चन्द्रवर्मा ने कुछ निकट जाकर देखा । समझना संभव नहीं हुआ कि उनमें से उसकी पत्नी कौन है ? वह आँखें बड़ी करके देखता ही रह गया ।

फिर यकायक चारों ने नाचना शुरू किया । चन्दवर्मा को आश्चर्य हुआ कि उसकी पत्नी को

नाचना किस ने सिखाया ? थोड़ी देर में वह समझ गया कि यह सब भूतों की माया है ।

कुछ समय बाद तीनों भूतों ने अपने असली रूप धारण किये । " अजी, सुनिए तो !" कहती हुई सीतालक्ष्मी चन्द्रवर्मा के पास आकर खड़ी हो गई ।

चन्द्रवर्मा उसकी ओर कुछ शंकाभरी दृष्टि से देखने लगा । एक भूत ठहाके मार मार कर ज़ोर से हँसने लगा और उसने कहा— "अजी, डरो मत । यह तुम्हारी ही बीबी है । और कोई नहीं है ।"

उसी भूत ने इस बार सीतालक्ष्मी से कहा— "सुनो बहन, अब हम सब तुम्हारे पति का रूप धारण करेंगे ! जब हम चारों एक साथ तुम्हारे सामने हाज़िर हो जाएँगे, तब तुम्हें पहचानना होगा कि तुम्हारे पति कौन है ? समझी ? "

बेचारी सीतालक्ष्मी पसीना पसीना हो गई । फिर और एक बार कमरे में अंधेरा छा गया, और कुछ ही क्षणों में फिर प्रकाश फैल गया । अब सीतालक्ष्मी के सामने अपने पति के समान रूपवाले चार पुरुष पेश आये ।

सीतालक्ष्मी सब की ओर बारीकी से देख रही थी, कि उसके दिमाग में एक उपाय सूझा । उन चारों की तरफ़ देखते हुए उसने ढाढ़स बाँधकर पूछा— "ज़रा सुनिये तो, अभी अभी मेरे पति ने मेरे लिए एक गहना बनवाया है । वह गहना कौनसा है भला ? अँगूठी है, नथ है, झुमके हैं या चूड़ियाँ ? आप में से हर कोई जिस गहने का नाम लेना चाहते हैं, वह नाम अपनी हथेली पर लिखकर दिखाइए । तब मैं झट बता दूँगी कि मेरे पति कौन है ?"

"तुम तो बड़ी अक्लमंद मालूम होती हो ! हथेली पर लिखकर बतानेको कह रही हो ! शायद तुम्हारे पति की हथेली पर कोई जन्मजात तिल होगा । उसे देख कर तुम अपने पति को पहचानना चाहती हो न ? ठीक है मेरी बात ?" एक भूत ने पूछा ।

"यूँ ही शंका क्यों करते हो ? चाहो तो तुम चारों अपनी हथेलियों की जाँच करो ।" सीतालक्ष्मी ने साहस के साथ जवाब दिया ।

"तो तुम यह चाल चल रही हो कि उस गहने का नाम केवल तुम्हारे पति ही को मालूम है ।

चलो, मैं तो प्रकट हो गया, अब पहचानो बाकी तीनों में से तुम्हारा पति कौन ?'' भूत ने फिर समस्या उपस्थित की ।

इस के बाद उसी भूत ने बाकी तीनों के लिए कलम और स्याही का प्रबंध करवाया । चन्द्रवर्मा रूपधारी भूतों ने अपनी अपनी हथेलियों पर गहने का नाम लिख दिया ।

सब से पहले एक भूत ने अपनी हथेली सीतालक्ष्मी के सामने धर दी, उसपर लिखा हुआ था 'नथ' । दूसरे की हथेली पर भी 'नथ' ही लिखा हुआ था । और तीसरे की हथेली पर भी वही 'नथ' !

अब खिल खिलाकर हँसते हुए भूत ने प्रश्न किया ''अब बता दोगी तुम्हारा पति कौन है ? ''

सीतालक्ष्मी मुस्कुराती हुई बोली— ''भूतों में भी तुम लोग भले लगते हो । शायद इसी लिए तुम लोग हम को परेशान किये बगैर ही शौक से हमारा मज़ाक उड़ा रहे हो । तुम लोगों ने अपनी माया की शक्ति से मेरे पति के मन पर काबू करके सब के द्वारा 'नथ' लिखवाया । मैं तुम्हारी तारीफ़ करती हूँ । लेकिन एक बात तुम परख नहीं पाये ।''

'' वह बात कौन-सी बहन ?'' एक भूत ने झट पूछा ।

''मेरे पतिदेव कुछ लिखने के पहले कागज़ के ऊपर 'ओम्' लिखकर फिर बाकी सारा लिखते हैं । यह बचपन से उनकी आदत है । परंतु तुम लोगों का यह वशीकरण उस भगवान के सम्मुख सफ़ल नहीं हो पाया । हथेली पर 'ओम्' लिखा हुआ व्यक्ति ही मेरा पति है ।'' यह निवेदन करते सीतालक्ष्मी ने अपने पति को दिखाया !

''हाँ, हथेली में भगवान ? 'ओम्' भगवान के सामने हमारे खेल कैसे चल सकते हैं ?'' कहते हुए तीनों भूत अदृश्य हो गये ।

अपनी पत्नी की बुद्धिमानी के कारण पति-पत्नि भूतों से पिंड छुड़ा सके । चन्द्रवर्मा ने अपनी पत्नी की होशियारी की खूब प्रशंसा की । रात वहीं बिताकर सबेरा होते ही दोनों अपने गाँव की ओर चल पड़े ।
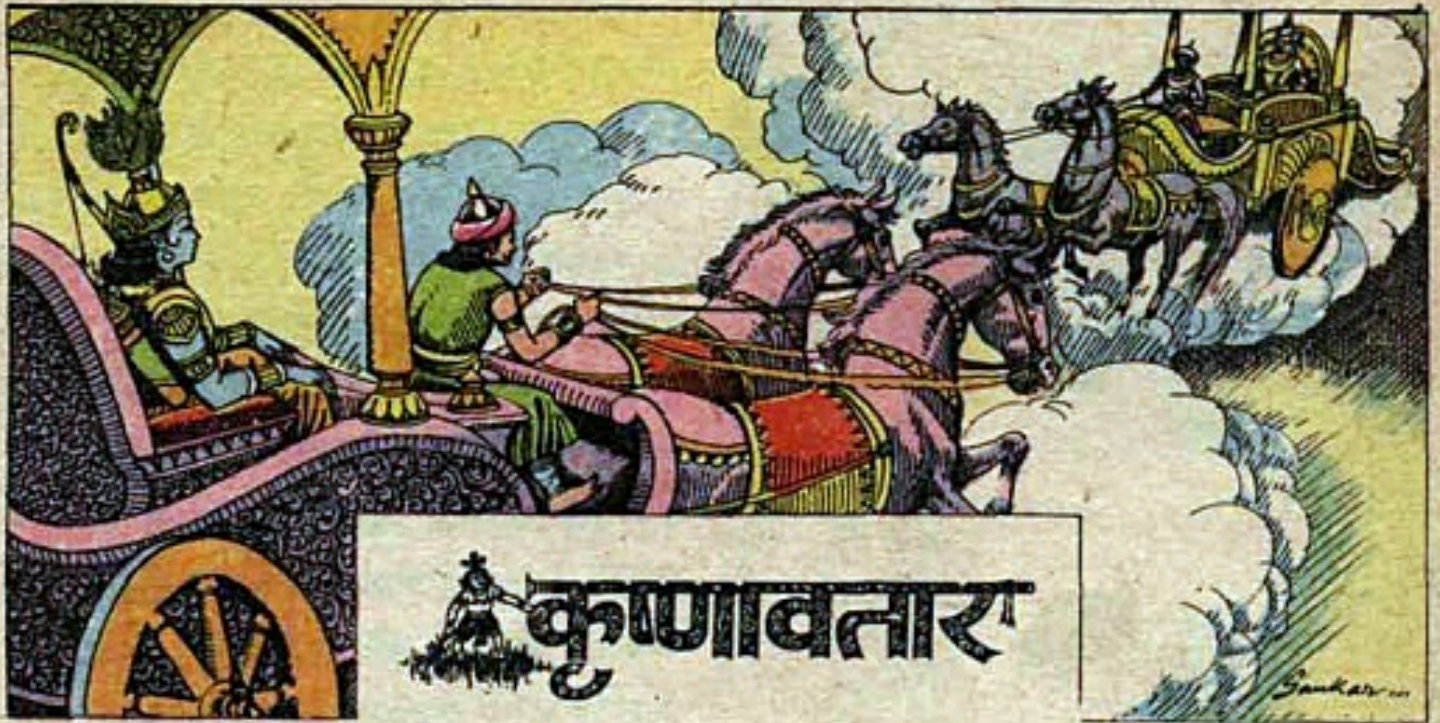
करवीरपुर पहुँचते ही कृष्ण ने वहाँ के पहरेदारों को अपना परिचय देकर सूचित किया कि हम सब शृगाल वासुदेव के साथ युद्ध करने के लिये आये हुए हैं। इसलिये तुरन्त आकर वह हमारे साथ युद्ध करे।

पहरेदारों से यह संदेश पाकर शृगाल वासुदेव की आँखें क्रोध से लालपीली हो गयी। वह तुरन्त अपने सूर्य से प्राप्त रथ पर सवार हुआ। स्वर्णकवच धारण कर अपने अपूर्व धनुष-बाण, खड्ग और कुछ आयुध लेकर अपनी सेना को बिना बुलाये वह अकेला ही चल पड़ा। उसे अपने बल-पराक्रम पर पूरा भरोसा था। सेना के अभाव में भी वह अकेला लड़ सकता था। अतः बिना सेना के कृष्ण के साथ लड़ने के लिए सन्नद्ध हुआ।

कालयम के समान आनेवाले शृगाल वासुदेव को देखकर कृष्ण व बलराम संभ्रम में आ गये। दमघोष ने उन दोनों को उत्साहित किया। इस के बाद कृष्ण अपने रथ को हाँकते हुए शत्रु के रथ की ओर चल पड़ा। दोनों के बीच भयंकर द्वंद्व युद्ध छिड़ा।

थोड़ी देर बाद दोनों ने एक दूसरे पर बाणों की वर्षा की। मगर उन के अस्त्रही एक दूसरे से टकराकर टूट पड़ने लगे। कृष्ण ने बाद में शत्रु के धनुष को तोड़कर उसके सारथी को मार डाला। मगर शृगाल वासुदेव ने तनिक भी विचलित न होकर दूसरा धनुष हाथ में उठाया। वह स्वयं ही अपना रथ हाँकते हुए कृष्ण के सामने जाकर बोला, "तुमने गोमंतक के पास कुछ राजाओं को परास्त किया और उसी कारण विजय-गर्व से

१४. शृगाल वासुदेव का वध

प्रेरित होकर यहाँ भी आये हो। वहाँ के राजा मूर्ख और नीच थे। यहाँ तुम अकेले मेरे सामने आये हो, मैं भी अकेला ही हूँ। इसी को धर्मयुद्ध कहते हैं। इस विश्व में दो वासुदेवों का रहना असंभव है। इसलिये तुम्हारा संहार करके मैं खुद को अकेला वासुदेव कहलाऊँगा। अब ज़्यादा बात क्या करनी है? तुम आ जाओ मेरे सामने और मैं देखता हूँ तुम्हारी युद्ध-कुशलता को। आज या तो तुम मर जाओ, नहीं तो मैं!

कृष्ण ने परिहासपूर्ण स्वर में कहा, "यदि तुम्हारे मन में अब भी युद्ध करने की कामना है, तो तुम अपने प्रताप का परिचय दो। मैं भी देखना चाहता हूँ। इसके लिए जो भी मुझे करना होगा, करूँगा। उस बारे में अभी कुछ कहने की मुझे ज़रूरत नहीं है।"

इस पर शृगाल वासुदेव ने अत्यंत शीघ्रता के साथ कृष्ण पर बाण, तोमर, चक्र, कुल्हाड़ियाँ, खड्ग आदि फेंककर उस प्रदेश को अंधकारमय बनाया। कृष्ण ने यह देखकर उस से कहा, "तुम ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया और मैं ने उसे प्रत्यक्ष देखा। अब मेरा करिश्मा देखो। तुम्हारे पास कई प्रकार के शस्त्र हैं। पर मैं भी कुछ कम नहीं हूँ। तुम्हारी शस्त्रों की बौछार मैंने देखी। अब मेरे अस्त्र को भी तुम देखो।" यह कहकर कृष्ण ने उसपर चक्रायुध का प्रयोग किया। चक्र अत्यंत शीघ्र गति से और भयंकर रूप में परिभ्रमण करता हुआ बिजली की भाँति आया और शृगाल वासुदेव की गर्दन काटकर सिर और बाकी शरीर अलग-अलग किया। शृगाल वासुदेव को ऐसे अस्त्र की कल्पना तक न थी। उसका सारा घमण्ड चूर चूर हो गया। एक क्षण शृगाल वासुदेव बढ़ बढ़कर बातें कर रहा था। अब उसका सर शरीर से अलग हो गया! उसके बाद चक्र कृष्ण के हाथ लौट आया।

युद्ध में शृगाल वासुदेव की मृत्यु का समाचार पाकर अंतःपुर की नारियाँ रोती-कलपती अपने पति के शव के पास पहुँची। पट्टमहिषी अपने पुत्र शक्रदेव को अपने साथ ले आयी और उसको कृष्ण के पैरों में लिटाकर रो पड़ी। कृष्ण ने उसको सान्त्वना दी और उस राज्य के मन्त्री, सामन्त तथा नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बुलवाकर उसने शक्रदेव का राज्याभिषेक करवाया।

इस के बाद कृष्ण ने मथुरा लौटने की बात की; तब उसके मामा दमघोष उस से बिदा ले अपनी सेना सहित चेदि-राज्य को लौट गये। कृष्ण और बलराम पांच दिन की यात्रा करके छठे दिन मथुरा-नगर पहुँचे। नगर सीमा तक पहुँचते ही कृष्ण ने अपने पांचजन्य का शंखनाद किया। शंखनाद सुनते ही उग्रसेन, यादवों तथा प्रमुख पुरोहितों को साथ लेकर कृष्ण-बलराम की अगुवानी करने निकला। उसने हाथी, घोडे, सैनिक, छत्र और मंगलवाद्य भी साथ रखे थे। बंदीजनों के स्तोत्रपाठ और ब्राह्मणों के आशीर्वाद के बाद बलराम और कृष्ण ने अत्यंत वैभव और सम्मान पूर्वक नगर में प्रवेश किया। कृष्ण के बल-पराक्रम को देख सारे मथुरावासी परमानन्दित हो गये। उन्होंने कृष्ण और बलराम को घेर लिया और सन्तोषपूर्वक नाचना प्रारंभ किया। उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा।

उधर कृष्ण-बलराम से पराजित होकर जरासंध मगध को लौट तो गया था; लेकिन वह अपमान की अग्नि में झुलस रहा था। बड़ी भारी सेना और अनेक राजाओंको साथ ले जाकर भी दो यादव-कुमारों के हाथों परास्त होकर उसे भाग जाना पड़ा था। इससे बढ़कर लज्जा की बात और क्या हो सकती है? इस अपमान की चिन्ता में वह अपना मानसिक संतुलन भी खो बैठा था।

आख़िर जरासन्ध ने फिर से सभी राजाओं को सम्मिलित किया और उन्हें समझाया, "पापी भगवान ने पिछली बार हमारा साथ नहीं दिया। इसलिये हम अत्यंत बल और पराक्रम रखने के बावजूद भी दो गोप बालकों के हाथों मार खा

गये । हमारा जो अपयश हो गया, वह शाश्वत रूप में रह जाएगा । हम यदि इस कलंक को धो डालना चाहते हैं, तो उसके लिये अब एक ही उपाय है कि किसी प्रकार उन दो यादव कुमारों का हम संहार करें । आप सब अपनी अपनी सेनाओं समेत मथुरा के लिये प्रस्थान कर वहाँ पहुँच जाइये । हमारी शक्ति के सामने यादवों का ठहरना असंभव है ।"
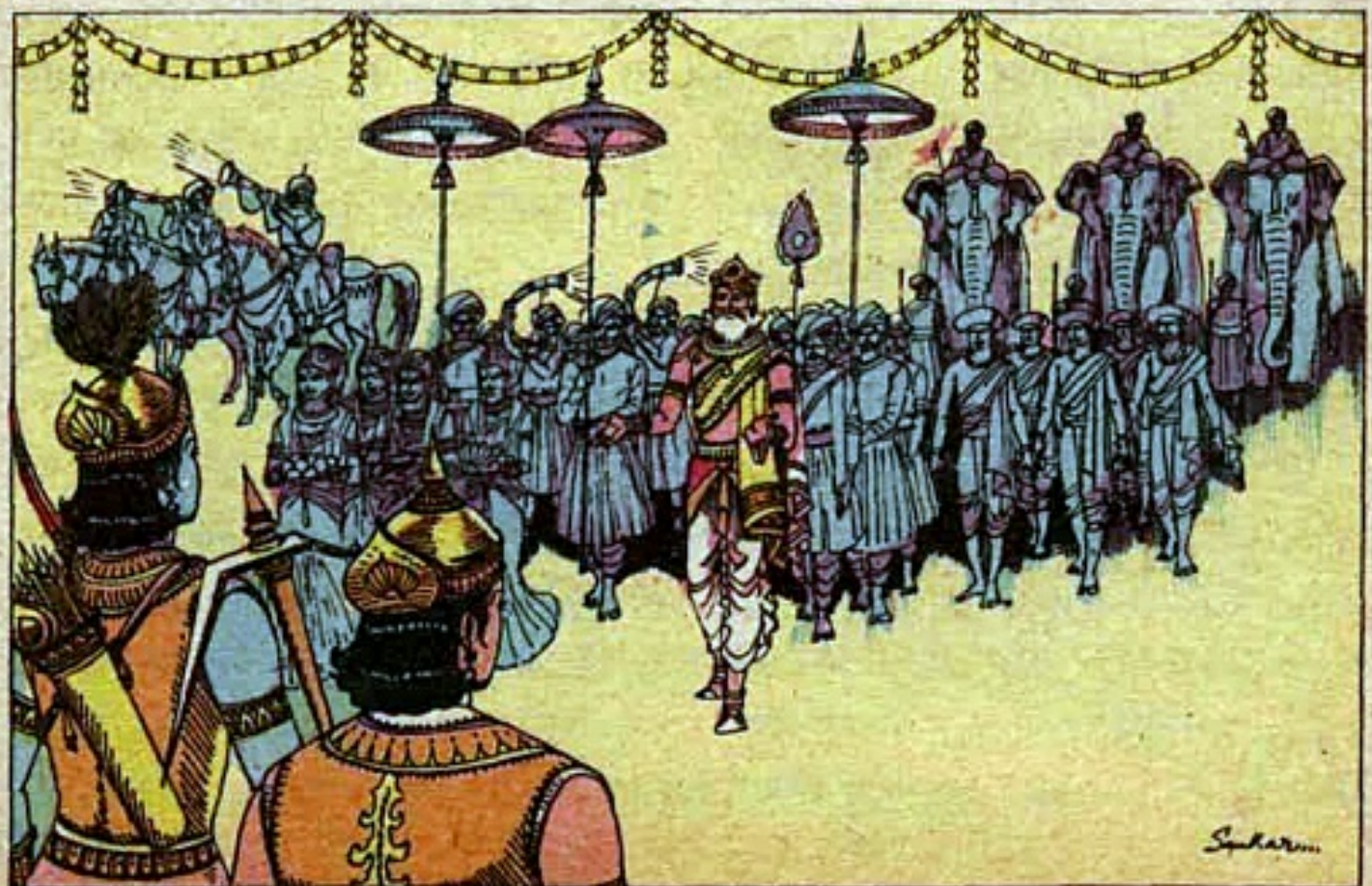
जरासन्ध के इस सुझाव का सब ने स्वीकार किया; क्योंकि ये सब के सब गोमंतक के पास अपमानित होकर भाग गये थे ! इसके अलावा उन में से अधिकांश लोग जरासंध के समधी, सगोत्रीय, रिश्तेदार और निकट मित्र ही थे । पौंड़, कलिंग, दन्तवक्त्र, शिशुपाल, शालव, रुक्मि, गंधार, त्रिगर्त, भगदत्त तथा कृष्ण के कुछ अन्य शत्रु; और अंग, वंग, विदेह, काश, करुश, मद्र, पांड्य इत्यादि देशों के राजा भी जरासन्ध के पक्ष में लड़ने को तैयार थे । इस प्रकार पुनः इक्कीस अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हुई ! वे सब अपनी मंज़िल तय करते हुए शीघ्र ही मथुरा पहुँचे । और उन्होंने नगर के चारों तरफ़ फैले बगीचों में और यमुना नदी के किनारे अपने डेरे डाल दिये । अब की बार जरासंध ने पूरी तैयारियाँ की थीं । अधिक-से-अधिक सेना जुटाने में वह समर्थ हो सका था । सब राजाओं में बड़ा जोश था और सब कृष्ण को युद्ध में पराजित करने का निश्चय किये हुए थे । जरासंध को लगा, इस समय जीत उसी की होगी ।

कृष्ण आदि ने दुर्ग के प्राचीरों पर चढ़ कर देखा— जरासन्ध की सेना प्रलय कालीन समुद्र की भाँति दृष्टिगोचर हुई ! इस पर कृष्ण बलराम की ओर देख हँसकर बोला, "ऐसा प्रतीत होता है, कि पृथ्वी का भार घटाने के लिये खुद भगवान ने ही यह इन्तज़ाम किया है ।"

दोनों ने मिलकर अपनी सेना के साथ शत्रु का सामना करने का निश्चय कर लिया ।

जरासन्ध ने अपने आये हुए राजाओं को युद्धतंत्र का इस प्रकार परिचय दिया—"सुनिये, हमारी सेनाओं को तत्काल मथुरा नगर को घेरना चाहिये । कुदालों से जहाँ-तहाँ दुर्ग के प्राचीरों को तोड़ना होगा । नगर को एकदम ध्वस्त बनाना होगा ।" गोमन्त पर्वत को घेरते समय जो जो

लोग जहाँ खड़े थे, उसी प्रकार उन स्थानों पर उन लोगों को खड़ा किया ।

इस बार जरासन्ध से युद्ध करने में यादव ज़रा भी विचलित नहीं हुए । वास्तवतः जरासंध के दल-बल के सामने उन की सेना न के बराबर थी । मगर कृष्ण उनके साथ था— यही उनका सहारा था ! गरुड केतनवाले रथ पर चक्र आदि आयुध लेकर कृष्ण और हल, मूसल आदि आयुध लेकर बलराम जब युद्ध के लिये निकल पड़े, तब सब को वह दृश्य बड़ा ही शोभायमान प्रतीत हुआ । वे दोनों उग्रसेन को साथ लेकर अपनी सेना के आगे रहकर चलते हुए जरासन्ध की सेना के समीप पहुँचे । अपनी सेना के आगे खड़े जरासन्ध ने सब से पहले उनका सामना किया । कृष्ण के पार्श्व में खड़े उग्रसेन को लक्ष्य करके वह कहने लगा, "भोजवंशी लोग राज्य करते हैं, तो यादव उनकी सेवा करते हैं । आजतक तो यही परिपाटी चली । ऐसे भोजवंश में जन्म लेकर तुमने मात्र अपने वंश की प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला दिया । तुम से बढ़कर कोई मूर्ख हो सकता है भला ? इस कृष्ण ने तुम्हारे पुत्र का संहार करके उसका राज्य हडप लिया; तुम सिर्फ नामधारी राजा हो । तुम कंस के श्राद्ध का भोजन करते हो ! तुम्हारे बाल भी पक गये, पर फायदा क्या ? अपनी लज्जा को तिलांजली देकर इस राज्य का उपभोग कैसे करते हो ? तुम कृष्ण के सेवक हो; राजा नहीं हो और न कभी हो भी सकते हो ।"

ये शब्द सुनकर कृष्ण ने क्रोध में आकर कहा, "आदरणीय उग्रसेन की निन्दा करने में ही तुम

अपने पौरुष का परिचय दे रहे हो ? निन्दा ही करना चाहते हो, तो मेरी निन्दा करो न। दरअसल मैं ही तो तुम्हारा शत्रु हूँ न ? कुछ समय पूर्व तुमसे ही गोमंतक के पास मेरे साथ युद्ध किया था न ? भूल गये ? इसलिये अब तुम केवल ऐसे हास्यास्पद शब्द मुँह से न निकालो। इस बार बिना पीठ दिखाये स्थिर खड़े होकर युद्ध करो। मेरा प्रताप इस बार पूर्ण रूप से देखो।" यह कहकर कृष्ण ने जरासन्ध और उसके सारथी पर बाण छोड़े और उसका धनुष तोड़ डाला।

दोनों पक्षों के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में उग्रसेन ने भी असाधारण पराक्रम का परिचय दिया। एक बार कृष्ण और रुक्मि के बीच द्वंद्वयुद्ध छिड़ा। उस में रुक्मि बुरी तरह से हार कर हट गया।

बलराम भी बौखलाये हुए जरासन्ध की सेनापर टूट पड़ा। इसे देख जरासन्ध ने बलराम को रोका। दोनों ने एक दूसरे के रथों को तोड़ डाला; और वे गदायुद्ध करने लगे। उन का युद्ध बहुत ही देखनेलायक था। उसको देखने के लिये अन्य लोगों ने कुछ समय के लिये युद्ध बन्द किया। जरासन्ध और बलराम एक दूसरे के प्रहार से खुद को बचाते हुए एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए दो शेरों की भाँति लड़ रहे थे। उनकी देहों से खून की धाराएँ बहने लगीं। पृथ्वी काँप उठी ! आखिर कोई भी किसी का संहार न कर पाया। और गदायुद्ध समाप्त हुआ !

इस के बाद कई दिन तक युद्ध चलता रहा। लेकिन अपनी कामना के अनुसार जरासन्ध को विजय प्राप्त नहीं हुई। दिन-ब-दिन उसके दल घटते गये। आख़िर वह थक गया। उसने सोचा कि इस बार भी दैव उसके अनुकूल नहीं है। फिर वह अपने साथ आये हुए राजाओं और सैनिकों को साथ लेकर मगध को लौट गया।

लेकिन जरासन्ध इससे भी निराश नहीं हुआ। इसी प्रकार उसने अठारह बार मथुरा पर आक्रमण किये। कृष्ण का संहार करना उसे संभव नहीं हुआ। और इसी प्रकार कृष्ण भी जरासंध का वध नहीं कर पाया; क्योंकि उस का वध किसी और के हाथों होना था !

दिन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगे। बलराम को अपने बचपन के दिन याद आये। एक बार

Sankar
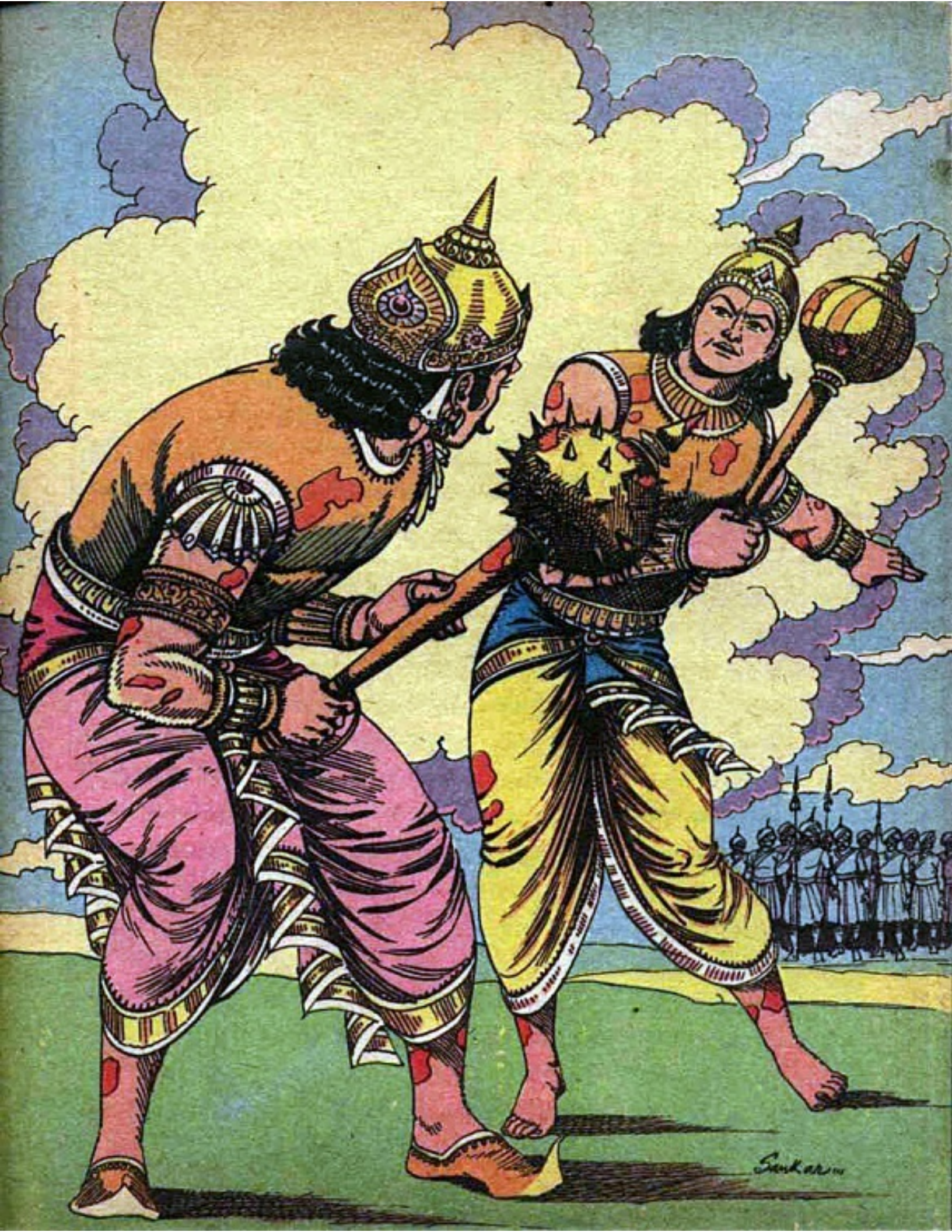
गोकुल देखने की इच्छा उसके मनमें पैदा हुई। उसने अपनी इच्छा कृष्ण के सामने प्रकट की। कृष्ण ने उसे एक बार वहाँ हो आने को कहा। कृष्ण खुद वहाँ जाना नहीं चाहता था। बलराम जंगल के प्रदेशों के योग्य वेष धारण कर गोकुल चला गया। उस को दूर से ही देखकर गोकुलवासी परमानन्दित हो उसका स्वागत करने निकल पड़े। बलराम ने उनमें से कुछ लोगों को प्रणाम किया, और कुछ लोगों से प्रणाम स्वीकार किये; कुछ के साथ आलिंगन किया। सारी गोपिकाओं ने उसे घेर लिया। बलराम ने उन सबका प्रेमपूर्वक परामर्श किया।

वृद्ध गोपकों ने उसे अपने मध्य बिठाकर उसके साथ चर्चा की। वे लोग बोले, "वत्स, तुम्हारा आगमन हमारे लिये अत्यंत हर्ष की बात है। यही एक मात्र उदाहरण काफ़ी है कि हरएक व्यक्ति के मन में अपनी जन्मभूमि के प्रति ममता होती है, प्यार होता है; कार्यवश कोई कहीं भी क्यों न रहे! तुम लोगों ने चाणूर और मुष्टिक को मार डाला, कंस का वध किया। गोमंतक के पास महासेना को पराजित किया; शृगाल वासुदेव का संहार किया—इस प्रकार तुम दोनों ने अपार यश प्राप्त किया। हम गाँववालों को इसके किये तुम दोनों पर बड़ा नाज़ है। इतने पराक्रमी होने पर भी तुमने जहाँ गायें चरायी हैं, उस स्थान को याद कर के यहाँ चले आये हो।"

"आप लोगों ने ही तो हम को पाल पोस कर बड़ा किया—और इसी से हम को ख्याति प्राप्त हुई। आप लोगों के जैसे रिश्तेदार और बन्धु किसी को बड़े भाग्य से ही प्राप्त होते हैं। मेरे छोटे भाई कृष्ण का मन भी राजभोगों में नहीं रमता यहाँ हम ने अपने बचपन के जो दिन गुज़ारे उन्हें हम कभी भी भूल नहीं पायेंगे।" बलराम ने कहा।

बलराम के मुँह से ये बातें सुनकर सब लोग अत्यंत प्रसन्न हुए। इस के बाद सब ने बलराम को खाने-पीने के उत्तम पदार्थ और पेय वगैरह देकर उसके प्रति अपना अपार प्रेम व्यक्त किया।

प्राचीन काल में चित्रकूट देश पर चित्रसेन नाम का राजा शासन करता था। उसकी रानी को विविध मनोरंजन के कार्यक्रमों में बड़ी अभिरुचि थी। सब से अधिक मनोरंजनकारी कार्यक्रम उसके लिए था— 'इन्द्रजाल' ! रानी के विशेष अनुरोध पर एक बार राजा ने घोषित किया— जो सब से बढ़िया इंद्रजाल का कार्यक्रम पेश करेगा, उसको एक लाख मुद्राओं का उपहार दिया जाएगा और उसका विशेष सम्मान किया जाएगा।

यह घोषणा सुनकर अनेक जादूगर राजधानी पहुँचे। इंद्रजाल के कार्यक्रमों के लिए राजा ने एक विशाल मण्डप बनाने का प्रबंध किया।

कार्यक्रम में भाग लेनेवाले प्रायः सभी जादूगरों ने अपने अपने अजब करिश्मे प्रेक्षकों के संमुख पेश किये। एक जादूगर हवा में पैदल चला, किसी ने मनुष्यों को बंदरों के रूप में बदल डाला और उन से बातें करवाई, किसी ने भरे मंडप में भूकंप की सृष्टि की। इस प्रकार 'न भूतो न भविष्यति' ऐसे कई कारनामों का प्रदर्शन किया गया।

सब कार्यक्रमों के समाप्त होने पर राजा के सामने समस्या खड़ी हो गई कि किस जादूगर को महान् क़रार दिया जाए। इस पर राजा ने मंडप में उपस्थित प्रेक्षकों को उद्देश्य करके कहा—"आप लोगों में से जो उत्तम जादूगर का चुनाव करेगा, उसे दस हज़ार मुद्राओं का पुरस्कार दिया जाएगा।"

यह सुनकर दर्शकों में एक ही कोलाहल मच गया। हर कोई आगे बढ़कर किसी एक जादूगर का नाम सुझाता रहा। दर्शकों पर नियंत्रण रखना मुश्किल हो गया। पुरस्कार किसको दें इसके बारे में तो कोई निर्णय हो नहीं सका।

उस समय जालानन्द नाम के एक जादूगर ने अपने इंद्रजाल के प्रभाव से दर्शकों को शान्त

वसुन्धरा

किया, फिर राजा की ओर मुड़कर निवेदन किया— "प्रभु ! हमारे जादू के महत्त्व का निर्णय ये प्रेक्षक नहीं कर पाएँगे। आप अकेले ही इसका निर्णय कर सकते हैं। पर इस समय आप भी संशय में पड़ गये हैं। इस लिए अब केवल एक ही उपाय बचा है।"

"वह उपाय क्या है ? बताओ तो ?" राजा चित्रसेन ने कौतूहलपूर्वक पूछा।

"इंद्रजाल विद्या के महत्त्व का अंदाज़ हमारे जादूगर ही कर सकते हैं। हमारे भीतर कोई स्वार्थ नहीं होता। हम निष्पक्ष भाव से निर्णय कर सकते हैं। इस लिए हम सब अपनी पसंद के जादूगर का नाम एक चिट पर लिख कर आपके हाथ में सौंप देते हैं। अधिकतर लोग जिसका नाम लिखेंगे, वही उत्तम जादूगर माना जाएगा।" जालानन्द ने उपाय बताया।

इस सुझाव को चित्रसेन ने मान लिया। थोड़ी देर में सभी जादूगरों ने अपने पसंद किये जादूगर का नाम लिखी चिट राजा के हाथ में दे दी। राजा ने उन चिटों को पढ़कर देखा, सब में जालानन्द का ही नाम था।

यह निर्णय सुनकर एक जादूगर आगे बढ़कर बोला—"महाराज, इस में ज़रूर कुछ धोखा है। यह बात तो सच है कि मैंने भी जालानन्द का ही नाम लिखा था, लेकिन मेरे विचार में मैं जालानन्द से अधिक कुशल जादूगर हूँ।"

चित्रसेन ने पूछा—"अगर ऐसा है तो तुमने अपना नाम न लिख कर जालानन्द का नाम क्यों लिखा ?"

जादूगर ने कहा—"महाराज, जालानन्द ने धोखा दिया है। उसने हम सब को इंद्रजाल के प्रभाव का शिकार बनाया है। न्यायोचित निर्णय करने के लिए इन्द्ररजाल विद्या का प्रयोग करना निषिद्ध है।"

अन्य जादूगरों ने भी उस की बात का समर्थन किया। इस पर जालानन्द ने राजा से कहा— "प्रभु, यह बात ठीक है कि न्याय-निर्णय में इंद्रजाल विद्या का प्रयोग नहीं करना चाहिए। लेकिन कई लोगों के मन में यह संदेह भी हो सकता है कि अनेक लोगों को सम्मोहित कर सकनेवाला इंद्रजालिकों को संमोहित कर सकता है या नहीं ? इस संदेह का निवारण करने के हेतु

मैंने यह अंतिम प्रयत्न किया है । पर यह न्याय-निर्णय नहीं है । इसका उत्तरदायित्व मैं आप ही पर छोड़ता हूँ ।

राजा ने मुस्कुराते हुए घोषणा की—"इंद्रजालिकों पर इंद्रजाल विद्या का प्रभाव दिखानेवाला जालानंद ही सर्वश्रेष्ठ इंद्रजालिक है ।"

राजा के इस निर्णय को शेष सभी इंद्रजालिकों को स्वीकार करना पड़ा ।

चित्रसेन ने जालानन्द को एक लाख मुद्राओं का पुरस्कार देते हुए पूछा—"तुम्हारा यह प्रदर्शन तो निश्चय ही अद्भुत है । पर तुम्हारी जानकारी के अनुसार तुम से भी महान् कोई इंद्रजालिक है ?"

"क्यों नहीं प्रभु ? वह है मेरी पत्नी । उसके सौंदर्य ने मुझ पर जादू का काम किया और मुझे अपना दास बनाया । उसी के लिए मैंने यह इंद्रजाल विद्या सीख ली ।" जालानन्द ने उत्तर दिया ।

राजा चित्रसेन को यह उत्तर पसंद नहीं आया । राजा ने कहा—"तुम्हारा इंद्रजाल तो तात्कालिक भ्रम है । पर तुम्हारी पत्नी का रूप-सौंदर्य भ्रम नहीं है न ? वह कैसे भ्रम हो सकता है ?"

जालानन्द ने समझाया— "इंद्रजाल का भ्रम कुछ घंटों तक प्रभाव रखता है, तो सौंदर्य-भ्रम वर्षों तक टिकता है । महाराज, इस विश्व में शाश्वत क्या है ? यह सब भगवान का इंद्रजाल ही तो है । मेरी पत्नी का सौंदर्य भी दस वर्षों बाद अदृश्य होनेवाला है न ?"

इस पर राजा ने जालानन्द को एक लाख मुद्राएँ देकर कहा— "मैं भी अपनी पत्नि के सौंदर्य के प्रभाव में आकर जनता के कल्याण की बात भूल कर भोग-विलासों में डूबता जा रहा हूँ । तुम्हारी बातों ने मेरे भ्रम को दूर किया है । इसी लिए मैं तुम्हें यह उपहार दे रहा हूँ ।"

जालानन्द संतुष्ट हो वहाँ से चला गया । उसके इंद्रजाल ने राजा को जनकल्याणकारी कार्यों में प्रवृत्त किया था । इस लिए जनता में उस का यश फैल गया ।

धीरानन्द

प्राचीन काल में दण्डकारण्य में योगानन्द नाम का एक महान् सिद्ध योगी रहा करता था। गोदावरी नदी के किनारे उसने अपना आश्रम बनाया था। योग-विद्या में प्रशिक्षण पाने के लिए सब जाति तथा वर्णों के विद्यार्थी योगानन्द के आश्रम में आते और उसकी सेवा-सुश्रूषा करते थे। योगानन्द एक वर्ष तक उनकी कडी परीक्षा लेता। जो योग-विद्या पाने की योग्यता रखते उनको आश्रम में भर्ती कर लिया जाता। जो अयोग्य सिद्ध होते वे घर वापस जाते।

योगानन्द बार-बार अपने आश्रम को छोड़कर अपने शिष्यों के साथ घने जंगल के अलग अलग हिस्सों में जाया करता था। वहाँ उसके शिष्य नये नये विषयों का ज्ञान प्राप्त करते। अनेक स्थल-देवताओं से उनको परिचित कराया जाता। अनेक प्रकार के राक्षसों को अपने अधीन लाने का अभ्यास वे किया करते थे।

एक बार धीरसिंह नाम का एक क्षत्रिय युवक योगानन्द का शिष्य बननेके विचार से आ पहुँचा। आयु में वह छोटा था अवश्य, लेकिन युद्ध-कला में वह निपुण था। वह नहीं जानता था कि भय किस चिड़िया का नाम है। अन्य शिष्यों की तरह धीरसिंह भी एक वर्ष तक परीक्षा देता रहा। अब एक वर्ष पूरा होने को था।

उस समय योगानन्द अपने शिष्यों के साथ निकलकर एक सरोवर के पास पहुँचा। सरोवर के किनारे एक छोटी-सी पर्णशाला बनाई गई। पर्णशाला के इर्द-गिर्द छोटे छोटे और कक्ष बनाये गये। दो दिन मेहनत करके योगानन्द और उसके शिष्यों ने एक सुचारु निवास-स्थान बना लिया।

उस पर्णशाला से थोड़ी दूरी पर एक अतिविशाल बरगद का वृक्ष था। वह वृक्ष एक सौ एकड़ के क्षेत्र में फैला था।

सरोवर के किनारे पहुँचने पर पहली ही रात

को योगानन्द ने अपने शिष्यों से कहा— "यह बरगद का पेड़ बहुत पुराना है। इस में त्रेतायुग के पिशाच भी निवास करते हैं। इनके बारे में अधिक विस्तार से बाद में समझाऊँगा। लेकिन आज रात को तुम में से किसी को वट-वृक्ष के पास नहीं जाना है। याद रखो, यह मेरा आदेश है।"

उस रात को भोजन करके सब लोग सो गये। धीरसिंह भी सब के साथ सो गया। पर आधी रात के समय उसकी नींद टूट गई। फिर उसने सो जानेकी बड़ी कोशिश की, पर नींद नहीं आई। इस लिए वह आश्रम से बाहर निकला और उस बरगद के वृक्ष के पास पहुँच गया। निडर तो वह पहले से ही था। मध्य-रात्री के समय एक अकेला धीरसिंह बड़ी जिज्ञासा के साथ बरगद की जटाओं के बीच जा खड़ा हुआ। देखना चाहा वहाँ कौन कौन से पिशाच निवास करते हैं। किसी से थोड़ी बातचीत ही क्यों न कर लूँ?

धीरसिंह बड़ा ही निडर था, इस लिए वह वट-वृक्ष के नीचे जाने को तैयार हो गया। उसके मन में यह इच्छा जागृत हुई कि कल सुबह गुरुजी इस बरगद के बारे में जो कुछ बताना चाहते हैं, उसके संबंध में थोड़ी जानकारी पहले ही क्यों न प्राप्त कर लूँ।

बस, बरगद के समीप पहुँचकर जटाओं के बीच होकर चलने लगा। वह थोड़ा आगे बढ़ा कि एक जटा से उतरती हुई एक काली आकृति दिखाई दी। और कोई होता तो मारे डर के काँप उठता। धीरसिंह उस आकृति की ओर देखता रहा। जैसे कोई दोस्त मिलने के लिए आ रहा हो। जैसे ही वह आकृति ज़मीन पर उतर कर खड़ी हो गई, धीरसिंह ने गंभीर स्वर में पूछा— "तुम कौन हो?"

"मेरा नाम है अनुकंपन। रावण को सब से पहले यह वार्ता देनेवाला मैं ही हूँ कि रामचन्द की पत्नि सीता इसी अरण्य में रहती है!" जटा से उतरी आकृति ने कहा।

धीरसिंह ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। उसने अनुकंपन से पूछा—"ओह! उस युग से तुम यहीं पर रहते हो?"

"मैं अधिकतर नरक में रहा करता हूँ। जब वहाँ से मुझे अनुमति मिलती है, तब मैं इस विशाल वट-वृक्ष पर आ जाया करता हूँ।"

अनुकंपन धीरे धीरे धीरसिंह की ओर बढ़ते हुए बोला ।

"ओह, यह बात है । नरक में तुम्हारे सभी सगे-संबंधी कैसे हैं ? कुछ तो बताओ ।" अपनी जगह से ज़रा भी न हटते हुए धीरसिंह ने पूछा । वह बराबर जानता रहा है कि अनुकंपन उसकी ओर सरकते हुए उसके पास आ रहा है ।

"क्या बताऊँ ? बड़ा बुरा हाल है उनका ! वे लोग नरक की ज्वालाओं में झुलसकर नाना प्रकार की यातनाएँ झेल रहे हैं । " अनुकंपन ने जवाब दिया ।

"सब से अधिक साहसपूर्वक इन यातनाओं को कौन झेल रहा है ?" धीरसिंह ने पूछा ।

"रावण ! वही एक वीर है जिसके साहस की तारीफ़ करनी चाहिए ।" अनुकंपन ने कहा ।

धीरसिंह ने पूछा— "रावण को भला क्या दंड दिया गया है ?"

"तेल के भाण्डों को गरम करने की सजा दी गई है उसको !" अनुकंपन ने स्पष्ट किया ।

"ओह, यह बात है ! यह तो सचमुच बहुत कठिन है । पर यह तो बताओ, नरक की यातनाएँ कौन पूर्ण रूप से सहन नहीं कर पा रहा है ?" धीरसिंह ने पूछा । वह ध्यानपूर्वक देख ही रहा था कि अनुकंपन धीरे धीरे उसकी ओर सरकता आ रहा है । पर फिर भी वह ज़रा भी विचलित नहीं हो रहा था ।

"वह कुंभकर्ण है जो नरक की यातनाओं को बिलकुल सहन नहीं कर पा रहा है । दिन-रात चीखता-चिल्लाता है और सब की नींद हराम कर देता है ।" अनुकंपन ने उत्तर दिया ।

धीरसिंह ने पूछा— "कुंभकर्ण को क्या दंड दिया गया है ? मैं जानूँ ?"

"एड़ी तक आग लगाया गया है !" अनुकंपन ने कहा ।

"उफ़, बड़ी पीड़ा में है ! चिल्लाएगा नहीं तो क्या करेगा ?" धीरसिंह आश्चर्य के साथ बोला ।

"कुंभकर्ण अग्निज्वालाओं में औंधे मुँह लटक रहा है !" अनुकंपन ने कहा ।

"सचमुच बड़ी पीड़ा में है बेचारा ! पर क्या तुम सुना सकते हो कि कुंभकर्ण कैसे चिल्ला रहा है ?" धीरसिंह ने पूछा ।

"ओह, ज़रूर सुनाऊँगा ।" कहते हुए अनुकंपन ने भयंकर गर्जन किया । धीरसिंह को

अपने कान ज़ोर से बन्द करने पड़े ।

"बस, यही है ! भेड़-बकरी ज़ोर से मिमियाने लगे जैसी ही यह चीत्कार है । शायद कुंभकर्ण की तरह चिल्लाना तुम्हारे लिए संभव नहीं है ।" धीरसिंह ने अनुकंपन को उकसाया ।

"तो इस बार सुनो ।" कहकर अनुकंपन यों ज़ोर से चिल्लाया कि पृथ्वी काँप उठे । इस बार भी धीरसिंह ने अपने दोनों कान बन्द किये । फिर भी उसे लगा कि उसका दिमाग़ चकरा रहा है ।

"बस यही ? यह तो घोड़े ज़ोर से हिनहिनाते हैं— ऐसा भी नहीं लगा । कुंभकर्ण इस से भी अधिक ज़ोर से चिल्ला रहा होगा, लेकिन तुम उसका अनुकरण नहीं कर पा रहे हो ।" धीरसिंह ने कहा ।

"क्यों नहीं, इस बार अब सुनो तो !" कहकर अनुकंपन ने एक ज़ोरदार साँस ली और पूरी ताक़त लगा कर चिल्लाया ।

धीरसिंह ने अपने हाथों से दबा-दबाकर कान बंद किये, लेकिन कोई फ़ायदा न हुआ । वह उस गर्जन से बेहोश हो गिर पड़ा ।

यही मौक़ा समझकर अनुकंपन धीरसिंह को निगलनेको आगे बढ़ा । पर इस बीच अनुकंपन का गर्जन सुन कर योगानन्द जाग उठा और अपने आश्रम से निकलकर तेज़ी के साथ वट-वृक्ष के पास आ पहुँचा । अपने कमंडलु से थोड़ा जल निकालकर अनुकंपन पर छिड़क दिया । उसके प्रभाव से अनुकंपन पृथ्वी में घुसकर पाताल लोक में भाग गया ।

इसके बाद योगानन्द ने धीरसिंह को जगाया और उसे आश्रम ले गया । धीरसिंह के मुँह से सारा वृत्त सुनकर बोला— "वत्स, तुम ने मेरे आदेश का पालन क्यों नहीं किया ? फिर भी तुम्हारे साहस पर मैं प्रसन्न हूँ । आज से मैं तुम्हारा नाम 'धीरानन्द' रख रहा हूँ । तुम मेरे शिष्य बन गये हो । फिर धीरानन्द के योग-विद्या के प्रशिक्षण का प्रारंभ हो गया ।

कवि-आलोचक

कुमारगिरि राजा के दरबार में एक कवि रहा करता था, उसका नाम था रामशर्मा। रामशर्मा साहित्य के आलोचकों के प्रति उपेक्षा का भाव रखता था। वह हमेशा कहा करता था कि पाठक यदि काव्य पढ़कर संतुष्ट हो जाए, तो उतना ही बस है। लेकिन उस काव्य की आलोचना और उसकी व्याख्याएँ सब बेकार हैं।

पर राजा कवि और आलोचक दोनों को समान रूप से देखता था, उनका आदर करता था। रामशर्मा को यह अच्छा नहीं लगता था। एक दिन अवसर पाकर भरे दरबार में रामशर्मा ने आलोचकों के प्रति अपने विचार सब के सामने रखे।

एक दिन राजा ने रामशर्मा को बुलाकर कहा— "शर्माजी, आप एक काम करेंगे? गोविन्दपुर जाकर वहाँ के ज़मींदार भुजंगपति से मिलिये। आपने कुछ दिनों पूर्व जो नया काव्य रचा है, उसके बारेमें उनके विचार जान लीजिए। लौटकर फिर मुझे बताइए।"

राजा का आदेश पाकर रामशर्मा गोविन्दपुर गया। वहाँ के ज़मींदार से भेंट की और अपने नये काव्य के संबंध में उनके विचार पूछे।

भुजंगपति ने सब सुनकर कुछ चिन्ता के स्वर में निवेदन किया— "कवि महोदय, मैंने आपका काव्य केवल एक बार पढ़ा है। वह अत्यन्त प्रौढ रचना है। मेरी समझ में बहुत कम आया। बहुत अच्छा होता, उस काव्य की कोई व्याख्या उपलब्ध होती।"

रामशर्मा ने लौटकर भुजंगपति के विचार राजा को कह सुनाये।

इस पर राजा ने कहा— "तब तो शर्माजी, इस बार आप रंगपूर हो आइए। वहाँ पर वल्लभशर्मा नाम के एक पंडितजी रहते हैं। उनसे मिलकर अपने नये काव्य-ग्रंथ के बारे में उनके

रामानंद

विचार भी जान लीजिएगा ।"

रामशर्मा वल्लभशर्मा के पास पहुँच गये और अपने आने का कारण बता दिया ।

विनय के साथ वल्लभशर्मा ने निवेदन किया— "कविवर, आप का काव्य है एक महान् ग्रंथ निश्चय ! रस-निष्पति में आपने अपनी अनोखी प्रतिभा का परिचय दिया है । आप का काव्य अद्भुत है, अपूर्व है । हाँ, उसमें कुछ त्रुटियाँ भी हैं; परंतु वे त्रुटियाँ चंद्रमा पर अंकित धब्बों के समान हैं !" इस प्रकार वल्लभशर्मा ने काव्य के सौंदर्य पक्ष के साथ दोषों की ओर भी निर्देश किया ।

रामशर्मा रंगपुर से लौटा और राजा को वल्लभशर्मा के विचार सुना दिये । अब की बार राजा ने रामशर्मा से कहा— "शर्माजी, अपने नगर के एक प्रतिष्ठित विद्वान है शौरिशास्त्री । उनसे एक बार मिलने का अनुरोध मैं करूँ ?"

रामशर्मा शौरिशास्ती से मुलाक़ात करने गया । रामशर्मा की बातें सुनकर उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने विचार पेश किये— "कवि महोदय, आप की प्रतिभा भी मुझे साधारण लगी । ग़लत मत समझिए ।" महापंडित शौरिशास्त्री ने रामशर्मा के काव्य-ग्रंथ की त्रुटियों को सोदाहरण समझाया ।

रामशर्मा ने घर लौटकर अपने पर्यटन के अनुभवों की बारीकी से समीक्षा की । व्याख्या के अभाव में भुजंगपति जैसे साधारण पाठक उसका काव्य समझ नहीं पाते । वल्लभशर्मा की अलोचना न सुनता तो अपने काव्य की त्रुटियों का ज्ञान न होता । फलस्वरूप भविष्य में रची जानेवाली रचनाओं में इन त्रुटियाँ से बचने का अवसर ही न मिलता । शौरिशास्त्री की प्रत्यालोचना के कारण न केवल वल्लभशर्मा जैसे समालोचकों का स्तर ऊँचा हुआ, बल्कि स्वयं कवि को ऊँचे दर्जे का मार्गदर्शन मिला । ये सब बातें रामशर्मा ने भली भाँति समझ लीं ।

राजा को मालूम हो गया कि अब रामशर्मा को आलोचना की उपयुक्तता अच्छी तरह समझ में आ गई, तब राजा भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ । रामशर्मा ने फिर आलोचकों की कभी आलोचना नहीं की ।

काली मिर्च

कई शताब्दियों के पहले राजपुताने के एक गाँव में नानाजी नाम का एक क्षत्रिय बालक रहा करता था। छोटी उमर में ही उसके पिता का देहान्त हो गया। इस लिए वह अपने चाचाओं की देखरेख में पला।

चाचाओं ने नानाजी को क्षत्रियों के समस्त रीति-रिवाज़ सिखाए। बचपन में ही उसने घुड़-सवारी, धनुर्विद्या, अस्त्र-शस्त्र चलाना इत्यादि सारी विद्याएँ सीख लीं।

एक भड़कीले घोड़े को जब कोई काबू में न ला सका, तब नानाजी ने उसको नियंत्रण में लाकर पालतू बनाया और उस पर सवार हो घूमने लगा। उसके चाचा जब घोड़ों पर सवार हो कहीं निकल पड़ते, तब वह भी अपना घोड़ा लिये उनके पीछे चल पड़ता था। उसका घोड़ा भी अनोखा था, नानाजी को छोड़ किसी और को अपने ऊपर सवार नहीं होने देता था।

एक दिन एक व्यापारी कांडला से कुछ खड्ग राजमहल में ले आया। नानाजी उन तलवारों के पास बैठ गया, हर तलवार की लंबाई और उसकी धार की परीक्षा करता गया। जो तलवार उसे पसंद नहीं आई उसे अलग रखता गया।

व्यापारी यह सब कुतूहल से देखता रहा, उसने सोचा—"लगता है, यह बालक तलवारों को अच्छी तरह परखता है।" एक बढ़िया तलवार उठाकर उसने नानाजी के हाथ में धर दी।

उस तलवार को देखते ही नानाजी की आँखें चमक उठीं। उत्साह में भरकर उसने कहा—"मुझे ऐसी ही तलवार की ज़रूरत है। इस के होते क्या मज़ाल है कोई मुझे डरा दे।"

इसके बाद नानाजी उस तलवार को लेकर अपने चाचाओं के पास गया और उसे खरीदवा देने की माँग की।

एक चाचा ने कहा—"बेटा, हमारे जीवित

राजपुताने की लोककथा

रहते तुम्हें इस तलवार की क्या ज़रूरत है ।"

"यह खड्ग तो बहुत बड़ा है, इसे तो तुम ठीक उठा भी न पाओगे ।" दूसरे चाचा ने समझाया ।

नानाजी ने कहा—"मैं उमर में बढ़ता जा रहा हूँ। मेरे पास जो तलवार है, वह बहुत छोटी है।"

"बेटा, खड्ग की लंबाई से कोई मतलब नहीं । उसके धारण करनेवाले के साहस और पराक्रम ही मुख्य है । अगर तलवार की लंबाई कम हो तो शत्रु की ओर एक कदम और आगे बढ़कर उससे लड़ना होगा ।" नानाजी के चाचाओं ने कहा ।

बालक नानाजी अत्यंत निराश हो गया और उस तलवार को व्यापारी के हाथ लौटा दिया ।

थोड़े दिन बीत गये । एक दिन लुटेरों ने गाँव पर हमला कर दिया और गायों की रेवड़ों को हाँक ले गये । ऐसी हालत में गाँव के रिवाज़ के अनुसार ग्रामवासी डफली बजाते हैं ।

राजमहल में बैठे बालक नानाजी ने डफलियों की आवाज़ सुनी । उसने लोगोंसे पूछा—"यह आवाज़ भला कैसी ?" लोगों ने उसको बताया कि लुटेरे गायों को हाँक कर ले जा रहे हैं ।

मन-ही-मन नानाजी ने सोचा—"मेरे यहाँ होते हुए दुर्ग में यह अत्याचार कैसे होने दूँ ? हमारे चाचाओं के लिए यह अपमान की बात नहीं है ? मुझ जैसे कायर और डरपोक पुत्र को देख कर मेरी माँ लजाएगी नहीं ?"

वह झट अपने घोड़े पर सवार हुआ, और तलवार लहराता हुआ-लुटेरों के पीछे अपने घोड़े को उसने दौड़ाया । जंगल पार करने से पहले ही

नानाजी लुटेरों से जा मिला ।

लुटेरों का सरदार छोटे नानाजी को देख कर हँस पड़ा । बोला—"अरे छोकरे, अभी तेरी मसें तक नहीं भीगी हैं । तुम हमें को डरा कर गायों को कैसे छुड़ा ले जाओगे ?"

नानाजी ने सोचा कि अब यह समस्या बातों से हल होनेवाली नहीं है । तब वह अपने घोड़े को तेज़ी से लुटेरों के सरदार तक ले गया और अचानक ज़ोर से उसके सर पर तलवार का वार किया ।

सरदार ने कुशलता से अपना सिर मोड़ लिया । इस लिए नानाजी की तलवार के वार से उसकी नाक कट गयी । वह बाल बाल बच गया ।

लुटेरों के सरदार को बहुत गुस्सा आया । वह चिल्लाया—"देखते क्या हो ? इस छोकरे को मार डालो । इसको घेरकर पकड़ लो और टुकड़े-टुकड़े कर दो ।"

इस हंगामे के बीच गायों की रेवड़ गाँव की ओर दौड़ पड़ी । नानाजी ने सोचा—अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता । इन सब का मुकाबला मैं अकेला कैसे कर सकता हूँ ? उसने घोड़े को पीछे की ओर घुमाया और उसे गाँव की ओर दौड़ाया ।

लुटेरों ने नानाजी का पीछा किया । लेकिन नानाजी का घोड़ा यों तेज़ी से दौड़ा कि गाँव तक पहुँचने के पहले वे उसे रोक न पाये ।

उधर ग्रामवासी अपनी गायों को खोने में दुखी थे । जब गायों को फिर गाँव की ओर लौटते उन्होंने देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा । लेकिन किसी की समझ में न आया कि नानाजी जैसा छोटा लड़का लुटेरों के दल से गायों की रक्षा कैसे कर पाया !

नानाजी अपने चाचाओं से मिला तो उन्होंने समझाया— "बेटा, अभी से तुम ऐसी उद्दण्डता कर रहे हो ! बड़े हो जाओगे तो ज़रूर बड़े-बड़े साहस के काम कर सकोगे ।"

नानाजी ने झट कहा,—"चाचा, मैं छोटा बालक हुआ तो क्या हुआ ? काली मिर्च जो हूँ ! इसमें तीखापन ज़्यादा होता है न ! सवारी के लिए घोड़ा और हाथ में तलवार हो तो कोई काम कठिन नहीं है । कोई भी साहसिक काम मैं कर सकता हूँ ।"

उड़नेवाला सस्तन जानवर
उड़नेवाला सस्तन जानवर वास्तव में एक ही है—चमगादड़ ।

विशाल घोंसला
आस्ट्रेलिया की माल्ली किस्म की मुर्गी, अण्डे देने के लिये १५ फुट आड़े मापवाला घोंसला बना लेती है ।
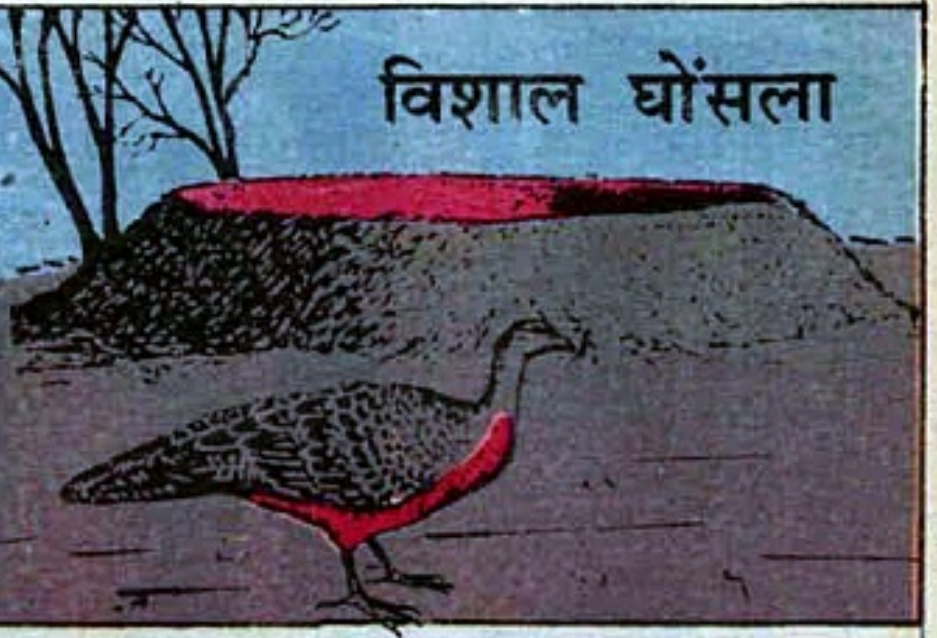
डाल्फिन्स-शार्क्स
तिमिंगल जाति के डाल्फिन्स प्रकट रूप में जैसे दीखते हैं, वैसे साधुप्रकृति के जलचर नहीं होते । उनका शिकार करने आनेवाली शार्क मछली को ये डाल्फिन्स दल बाँधकर उसका सामना करके भगा देते हैं । कभी कभी अपनी चोंचों से नोच नोच कर शार्क मछली का अन्त भी कर देते हैं ।
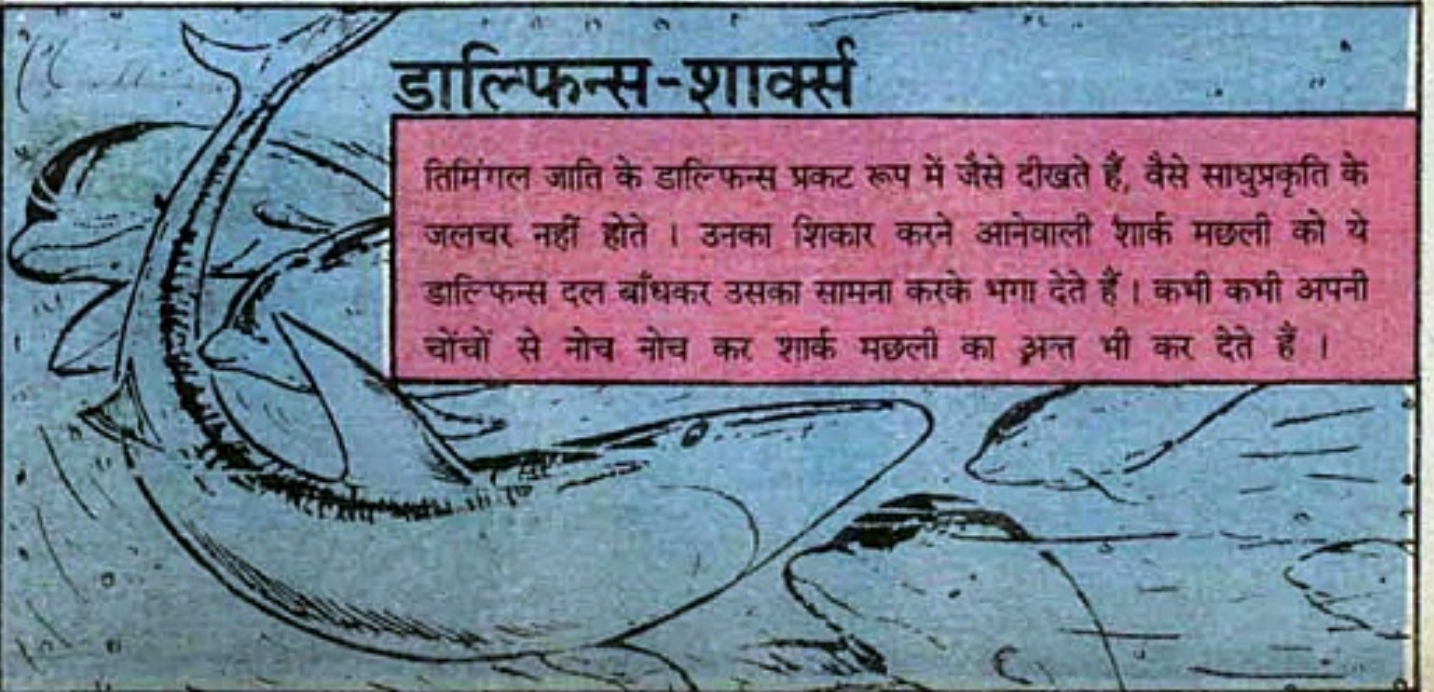
मुनिया रानी रोये टुस-टुस
बाहर निकल न पाये
हैण्डी बॉइ की मदद करो तुम
वो ही राह दिखायें
इसके साथ ही 25 पट्टियों के
एक पैक पर एक रुपये की छूट पाओ.
तो जल्दी करो. अपने पास के
हैण्डीप्लास्ट विक्रेता के पास
इनाम जीतनेवाला
अपना प्रवेश पत्र जमा करो.
दोस्तीभरी पट्टी!
Handyplast
medicated strips
HTA 2045
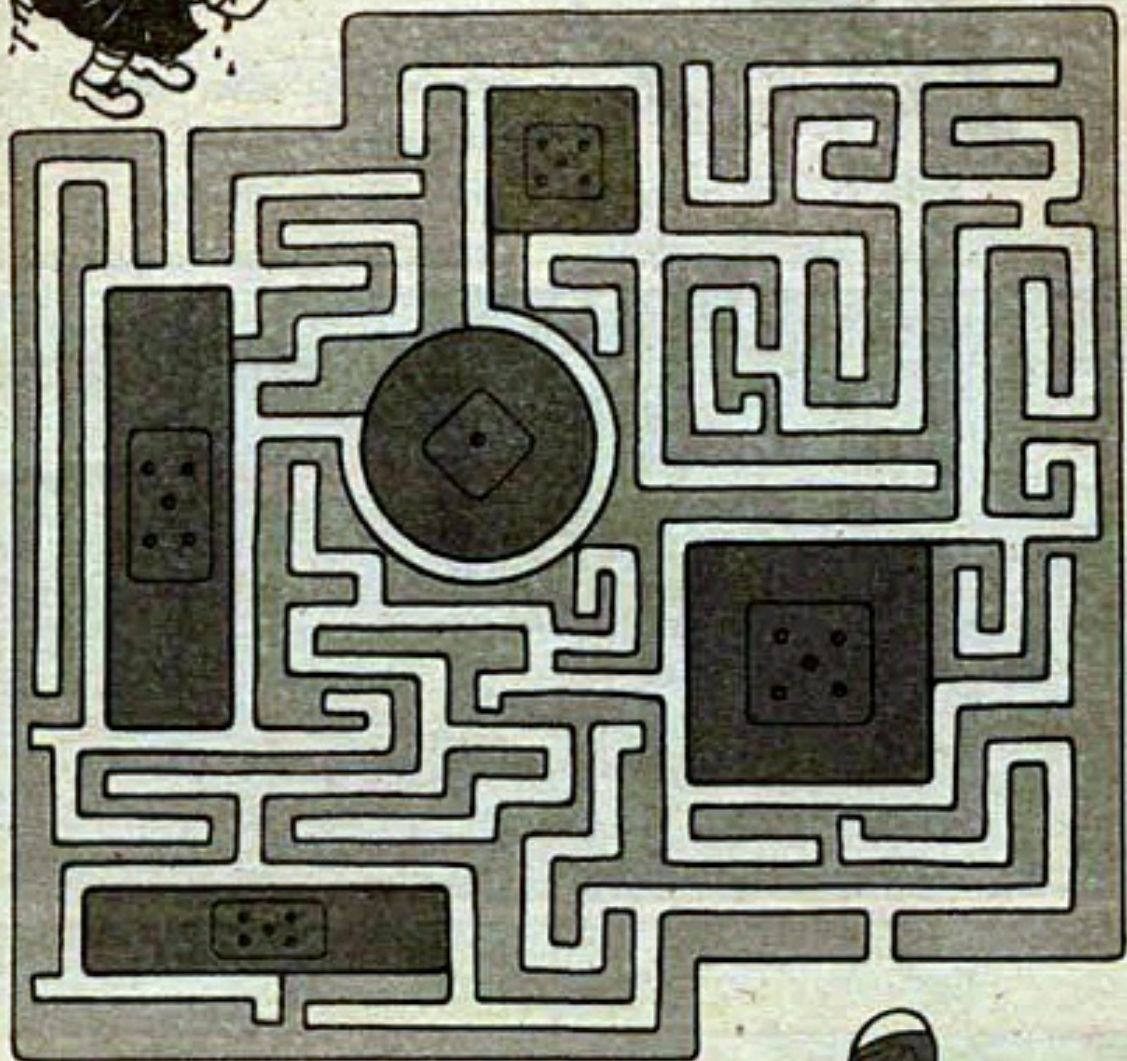
फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जनवरी १९८९ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

S. B. Takalkar

S. M. Dudhediya

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ नवम्बर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

सितम्बर के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : सड़े दांतों से होगी बीमारी !

द्वितीय फोटो : दूध गाय का है गुणकारी !!

प्रेषक : श्री हरीश बजाज, पोस्ट : हिमतसर-३३४८०२, जिला : बिकानेर (राज.)

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा : रु. ३६-००

चन्दा भेजने का पता :

डॉल्टन एजेन्सीस, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये :

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास -६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

अपने शिशु को दीजिए सैरेलॅक का अनूठा लाभ

कीजिए ठोस आहार की आदर्श शुरुआत

४ महीने की उम्र से आपके शिशु को दूध के साथ-साथ ठोस आहार की भी ज़रूरत होती है. उसे सैरेलॅक का अनूठा लाभ दीजिए.

पौष्टिकता का लाभ : सैरेलॅक का प्रत्येक आहार आपके शिशु की आवश्यकता के अनुसार सारे पौष्टिक तत्व प्रदान करता है — प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फैट, विटामिन तथा मिनरल, सभी पूरी तरह संतुलित.

स्वाद का लाभ : शिशुओं को सैरेलॅक का स्वाद बहुत भाता है.

समय का लाभ : सैरेलॅक पहले से ही पकाया हुआ है और इसमें दूध और चीनी मौजूद है. केवल इसे उबाले हुए गुनगुने पानी में मिला दीजिए.

पसंद का लाभ : तीन तरह के सैरेलॅक में से आप अपनी पसंद का चुन सकती हैं.

कृपया डिब्बे पर दिए गए निर्देशों का सावधानी से पालन कीजिए ताकि इसके बनाने में स्वच्छता रहे और आपके शिशु को संतुलित पोषाहार मिले.

मुफ़्त! सैरेलॅक बेबी केयर बुक
लिखिये : सैरेलॅक, पोस्ट बॉक्स नं. 3
नई दिल्ली-110 008

सैरेलॅक का वादा : स्वाद भरा संपूर्ण पोषाहार

RK SWAMY/FSL/3112/HIN

No share prices,
no political fortunes, yet...

Over 40% of Heritage readers are professionals or executives, 61% from households with a professional / executive as the chief wage earner. Half hold a postgraduate degree or a professional diploma.

– from an IMRB survey conducted in Oct. 1986

It's an unusual magazine. It has a vision for today and tomorrow.

It features ancient cities and contemporary fiction, culture and scientific developments, instead of filmstar interviews and political gossip. And it has found a growing readership, an IMRB survey reveals. Professionals, executives and their families are reading The Heritage in depth – 40% from cover to cover, 42% more than half the magazine.

More than 80% of The Heritage readers are reading an issue more than once.

And over 90% are slowly building their own Heritage collection.

Isn't it time you discovered why?

CMP-2155

So much in store, month after month.